कुरुक्षेत्र

फरवरी 1993

तीन रुपये

ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संगठनों का योगदान

वर्ष 38 अंक 4 माघ-फाल्गुन शक 1914

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए । अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है ।
'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 से कीजिए ।

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण सिंह सूदन
उप संपादक : ललिता जोशी

विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एडवर्ड बैक
उत्पादन अधिकारी : एस. एम. बहल
आवरण साज-सज्जा : अल्का
एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चन्दा : 30 रु०

फोटो साभार : फोटो प्रभाग, रमेश चन्द्र
ग्रामीण विकास मंत्रालय

विषय सूची

स्वैच्छिक संगठन एवं विभिन्न योजनाएं 2
सुन्दरलाल कुकरेजा
हम गांवों की तस्वीर बदल सकते हैं 5
हरि विश्नोई
संचार माध्यमों का ग्रामीण विकास में योगदान 10
देवेन्द्र कुमार द्विवेदी
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का भावी स्वरूप क्या हो? 12
डॉ. प्रभु दयाल यादव
ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका 16
डॉ. एस.एस. खनका
ग्रामीण उत्थान और स्वयंसेवी संगठन 18
आशारानी व्होरा
पर्वतीय क्षेत्रों की गतिविधियां 20
डॉ. ललित मोहन जोशी
ढालू भूमि पर आलू की खेती—कुछ महत्वपूर्ण सुझाव 22
अनिल कुमार
स्वैच्छिक संस्थाएं : एक सिंहावलोकन 24
डॉ. नरेश चन्द्र त्रिपाठी
सुधारात्मक परिवर्तन के कारक : स्वयंसेवी संगठन 27
अरविन्द कुमार सिंह
प्रगति में सहायक : स्वैच्छिक संगठन 30
म. वि. कुबडे
ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशु अनुसंधान का योगदान 34
डॉ. रमेश दत्त शर्मा
अपनी कमायी रोटी का सुख 38
महेश चन्द्र श्रोत्रिय
समन्वित ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण योजनाएं 39
विजय दूबे
नवनिर्माण और स्वैच्छिक संस्थाएं 40
डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक : एक विश्लेषण 44
डॉ. प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो ।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें । दूरभाष : 384888

स्वैच्छिक संगठन एवं विभिन्न योजनाएं

□ सुन्दरलाल कुकरेजा □

भारत जैसे विशाल और विस्तृत भूभाग में दूर-दूर तक फैले गांवों के विकास और वहां सुखी जीवन का वातावरण बनाने के लिए सरकार की ओर से तो अनेक परियोजनाएं और कार्यक्रम चल रहे हैं लेकिन ग्रामीण विकास की जटिल समस्या का निदान केवल सरकारी कार्यक्रमों से सम्भव नहीं है । सरकारी संसाधनों और प्रशासनिक तंत्र की भी अपनी सीमाएं होती हैं । आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी प्रयासों को बल देने के लिए सामाजिक संगठन और स्वैच्छिक स्वयंसेवी संस्थाएं भी आगे आएं और एक दूसरे के पूरक के रूप में ग्रामीण जगत को नया जीवन देने के काम में हाथ बटाएं । भारतीय सामाजिक परम्परा में परहित को प्रमुखता दी गई है और यह सत्य है कि जो व्यक्ति, संगठन या संस्थाएं दूसरे के हितों के लिए आगे बढ़ते हैं, वही समाज को अधिक सभ्य, सुखी, सुविधायुक्त और सम्पन्न बना सकते हैं ।

भारत सरकार ने भी ग्रामीण विकास के काम में जन सहयोग के महत्व को पहचानते हुए ऐसी संस्थाओं को बढ़ावा देने का प्रयत्न किया है जो स्वेच्छा से गांवों में काम करने और वहां की जनता के जीवन स्तर को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं । सरकार गांवों की बेहतरी के लिए अधिक धन का आबंटन कर सकती है, उस धन के उपयोग की योजनाएं बना सकती है और प्रशासनिक अधिकारियों को उसके कार्यान्वयन की जिम्मेदारी सौंप सकती है । लेकिन बहुत से काम ऐसे हैं जिन्हें सामाजिक स्तर पर, आम लोगों की भागीदारी और जन सहयोग से अधिक सरलता से पूरा किया जा सकता है । उदाहरण के लिए गांव में सफाई के लिए सरकार अधिक से अधिक सफाई कर्मचारी नियुक्त कर सकती है, लेकिन लोगों को साफ रहने और अपने आस पास के पर्यावरण को भी साफ रखने की आदत तो स्वयं ही डालनी होगी । यह आदत जोर जबर्दस्ती से नहीं, लोगों को समझा-बुझाकर और उनका हित-अहित बता कर अधिक आसानी से डाली जा सकती है और यह काम स्वैच्छिक संगठन अधिक कुशलता व सक्रियता से कर सकते हैं ।

हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य लक्ष्य गरीबी का उन्मूलन, कमजोर व उपेक्षित वर्गों का उत्थान और विकास के लाभों में सबकी भागीदारी सुनिश्चित करना है । इसके लिए जो अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए हैं, उनकी जानकारी शहरी और साक्षर जनता को तो अखबारों व प्रचार माध्यमों से मिल जाती है लेकिन दूर देहात में रहने वाले, सामान्य गतिविधियों से अलग थलग रहने वाले और आधुनिक व नई प्रौद्योगिकियों से पूर्णतः अनभिज्ञ ग्रामीण जनता को इनकी जानकारी और उसका लाभ उठाने की सुविधा स्वैच्छिक संगठन ही दे सकते हैं । इसीलिए सरकार भी विभिन्न विकास कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संस्थाओं की अधिकाधिक भागीदारी पर बल दे रही है और योजनाएं बनाते समय भी इस का ध्यान रखा जाता है कि स्वैच्छिक संस्थाओं को समाज कल्याण व ग्रामीण विकास में पर्याप्त भूमिका निभाने का अवसर मिल सके ।

विकास के सामाजिक पहलू

विकास और विशेषकर ग्रामीण विकास का एक तकनीकी पहलू होता है जिसमें कुरीतियों, कठिनाइयों और कमियों को दूर करने के लिए धन, संसाधन और तकनीकी सहायता की आवश्यकता होती है । दूसरा पहलू सामाजिक पहलू है जिसमें उपलब्ध सुविधाओं व सहायता का लाभ उठाने या उसकी इच्छा शक्ति जागृत करने की जरूरत होती है । सरकारी तंत्र तकनीकी पहलू पर जोर दे सकता है लेकिन किसी समस्या के सामाजिक आयाम को स्वैच्छिक संगठन और स्वयंसेवा की भावना से प्रेरित व्यक्ति ही हल कर सकते हैं । परिवार नियोजन व कल्याण कार्यक्रम इस सामाजिक पहलू की उपयोगिता को बहुत सार्थक ढंग से लक्षित करते हैं ।

परिवार छोटा रखने की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है । हमारी सारी योजनाएं और उनका फल इसीलिए विफल होता लगता है कि हम अपनी बढ़ती आबादी पर नियंत्रण नहीं पा रहे हैं । इसीलिए सरकार ने परिवार कल्याण को विकास योजनाओं का अभिन्न अंग बनाया है । गरीबी निवारण की कोई परियोजना हो या रोजगार सृजन का कोई कार्यक्रम, अधिक अन्न उपजाने का अभियान हो या साक्षरता का प्रसार ये सब तभी सफल हो सकते हैं जब हमारी जनसंख्या

सीमित रहे । इसलिए सरकार ने छोटे परिवार की परिकल्पना पर अमल के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये और विभिन्न प्रकार की सुविधाएं व सहायता प्रदान की । किन्तु अब तक का अनुभव बताता है कि जब तक उन परिवारों और व्यक्तियों को, जिन्हें आबादी सीमित रखने की सर्वाधिक आवश्यकता है, इसके लिए प्रेरित नहीं किया जाता है कि वे परिवार छोटे रखें, तब तक सारे सरकारी प्रयास सफल नहीं हो पाते । इसके लिए स्वैच्छिक संस्थाओं की अहम् भूमिका है ।

यही स्थिति रोजगार सृजन कार्यक्रमों की है । ग्रामीण जनता को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए सरकार ने रोजगार बढ़ाने के कई कार्यक्रम चालू किये हैं । अनुभवों से पता चलता है कि निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम कुछ सीमा तक रोजगार उपलब्ध कराने में सफल रहे हैं और उनके परिणामस्वरूप गांव में कुछ स्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन हुआ है, लेकिन यह भी देखने में आया है कि इन कार्यक्रमों में सहायता व ऋण प्राप्त लोग अपने ऋण की अदायगी के योग्य भी नहीं बन पाते । यही स्थिति महिला रोजगार की है । आठवीं योजना में इस पर बल दिया गया है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को बैंकों द्वारा दी गई सहायता पर आधारित कार्यक्रम नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि एक ऋण आधारित स्व-रोजगार कार्यक्रम माना जाना चाहिए । योजना में इस पर भी बल दिया गया है कि इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए ग्रामीण कार्यकर्ताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं व महिलाओं एवं स्वैच्छिक संस्थाओं को सक्रिय किया जाए और महिलाओं को इन संस्थाओं की मदद से स्व-रोजगार या सहकारी समितियों के गठन के लिए प्रेरित किया जाए ताकि वे अपने सक्षम दल बनाकर अपनी कठिनाइयों पर काबू पा सकें ।

पंचायती राज

ग्रामीण विकास में लोगों की सीधी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए संसद ने हाल ही में पंचायती राज विधेयक पारित कर ग्राम पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया है और इस प्रकार तीन स्तर के लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया है । इसके बाद तो स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका और महत्व अधिक बढ़ जायेगा । इन पंचायतों में महिलाओं, पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं, लेकिन इन वर्गों में साक्षरता के प्रसार के बिना इनके प्रतिनिधि स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के कामकाज में सक्रिय भूमिका और योगदान नहीं कर सकेंगे । साक्षरता का प्रसार किए बिना पंचायतों की सार्थकता और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध है । इसीलिए स्वैच्छिक संस्थाओं का काम और बढ़ने वाला है ।

कृषि प्रसार, ग्रामीण उद्योग धन्धों का विकास, अनाज उत्पादन बढ़ाने के लिए नई विधियों का उपयोग, हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को अधिक लाभकारी बनाने के लिए आधुनिक तकनीकी ज्ञान का प्रयोग, स्वच्छता, परिवार कल्याण, सामाजिक कुरीतियों व अन्ध विश्वासों के उन्मूलन के अभियान आदि सभी क्षेत्रों में स्वयंसेवी संस्थाओं का सराहनीय योगदान रहा है और आगे भी रहेगा । सिंचाई और जल संसाधनों के समुचित उपयोग के क्षेत्र में इन संस्थाओं के योगदान पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा ।

आन्ध्र प्रदेश में पाइप समितियां, गुजरात में फाड़ (पी.एच.ए.डी.) प्रणाली माडल, मोहिनी प्रयोक्ता सहकारी समितियां, मध्य प्रदेश में सिंचाई पंचायत और तमिलनाडु में बिजली भवानी परियोजना में जल प्रयोक्ता संस्था जैसी कई प्रकार की संस्थाएं काम कर रही हैं । जल संसाधन मंत्रालय द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, कुल 2.34 लाख हेक्टेयर क्षेत्र का जल प्रबंध इन जल प्रयोक्ता संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है । अतः जन सहयोग पाने का यह एक तरीका है कि ऐसी स्वैच्छिक संस्थाओं को और बढ़ावा दिया जाए ।

योजनाओं में स्वैच्छिक क्षेत्र

स्वैच्छिक संगठनों ने विभिन्न क्षेत्रों में काम किया है और कुछ संगठनों ने तो विकासात्मक कार्यक्रमों के लिए एक परिपक्व वितरण प्रणाली विकसित कर ली है । सातवीं योजना तैयार करते समय ग्राम विकास हेतु ऐसे संगठनों की सहायता प्राप्त करने के लिए एक बड़ा कदम उठाया गया था और यह उल्लेख किया गया था कि विकास कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संस्थाओं को शामिल करने के लिए गम्भीर प्रयास किए जाएंगे ।

स्वैच्छिक कार्य का तात्पर्य यही है कि वैयक्तिक लाभ को ध्यान में रखते हुए सामाजिक लाभ के लिए कुछ किया जाए । इसीलिए, स्वैच्छिक कार्य का क्षेत्र भी असीमित है । चूंकि स्वैच्छिक संगठन और स्वयंसेवकों में समर्पण की भावना अत्यधिक होती है, अतः वे औपचारिक संगठनों की अपेक्षा अधिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं ।

ये स्वैच्छिक संगठन व्यापक क्षेत्र में काम करते हैं । इनमें सरकार के निर्धनता निवारक कार्यक्रम, ग्रामीण युवकों का प्रशिक्षण, पीने के सुरक्षित पानी का संवर्धन, ग्रामीण आवास,

विज्ञान व तकनीकी ज्ञान को प्रोत्साहन, बंजर भूमि का विकास, स्वास्थ्य देखभाल तथा परिवार कल्याण, शिक्षा, महिलाओं व बच्चों का कल्याण एवं पिछड़ी एवं अनुसूचित जातियों के कल्याण कार्यक्रम भी शामिल हैं।

इन संस्थाओं ने ऐसे व अन्य कई क्षेत्रों में यद्यपि महत्वपूर्ण योगदान किया है, लेकिन इनके योगदान का मूल्यांकन और उपलब्धियों का आकलन सम्भव नहीं है। इसका कारण शायद यह है कि ये संस्थाएं अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न मंत्रालयों व विभागों से अलग से सम्पर्क करती है। इसी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी कोई मूल्यांकन पद्धति विकसित की जानी चाहिए कि जिससे इन संगठनों के कार्य की प्रगति का आकलन किया जा सके। साथ ही, इस बात की भी आवश्यकता है कि इन स्वैच्छिक संगठनों को अपनी समस्यायें उठाने व उनके समाधान के लिए एक मंच उपलब्ध कराया जाय। इसी उद्देश्य से 1986 में एक संस्था लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कापार्ट) का गठन भी किया गया था लेकिन इन संस्थाओं के कार्य के मूल्यांकन की पद्धति में अभी और सुधार अपेक्षित हैं।

यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आने वाले वर्षों में स्वैच्छिक संस्थाओं का महत्व और कार्य बढ़ेंगे किन्तु इसमें तेजी लाने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी संवृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण हो। यदि स्वैच्छिक संगठनों की व्यावसायिक एवं प्रबंधकीय क्षमताओं का व्यवस्थित रूप से गठन किया जाए तो वे वित्तीय रूप से और जन-सहभागिता के रूप में अधिक सक्रिय योगदान कर सकते हैं। किसी क्षेत्र के समग्र विकास के लिए जागरूकता उत्पन्न करना, समुचित कौशलों का विकास करना और विकासोन्मुखी कार्यक्रमों का होना अनिवार्य है। इसके लिए स्वैच्छिक संगठन जनता को संगठित करके, उन्हें आयोजना और विकास में सम्मिलित करके और आवश्यक समर्थन प्रदान करके विकास को साकार रूप प्रदान करने में सार्थक भूमिका निभा सकते हैं।

राष्ट्रीय ग्रिड का सुझाव

योजना आयोग ने अभी हाल में ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तरों पर एकीकृत विकास के लिए समुचित एवं प्रबंधकीय संस्थाओं के अध्ययन और विकास के लिए एक बल का गठन किया था। इसने मुख्य रूप से यह सिफारिश की है कि विकास के लिए ऐसी ग्राम संस्थाओं की स्थापना की जाए जिनमें राजनीतिक निहितार्थ के बिना, समस्त समुदाय की सदस्यता हो और उन विद्यमान स्वैच्छिक संस्थाओं की पहचान की जाए जिनका पिछला रिकार्ड अच्छा है ताकि उन्हें सुदृढ़ किया जा सके।

इसमें यह सुझाव भी दिया गया है कि केन्द्रीय स्तर पर स्वैच्छिक संस्थाओं के एक राष्ट्रीय ग्रिड की स्थापना की जाए ताकि उन्हें एक मंच प्रदान किया जा सके।

विशेष संवाददाता
दैनिक हिन्दुस्तान
बी-7, प्रेस एन्क्लेव, साकेत
नई दिल्ली-110 017

हम गांवों की तस्वीर बदल सकते हैं

□ हरि विश्नोई □

अब तक हमारे देश में गांवों का जो भी विकास हुआ है उसमें सरकारी प्रयासों के अतिरिक्त जन सहयोग भी बड़े पैमाने पर रहा है। करीब सात लाख गांवों वाले इस देश में सदियों से कष्ट भोग रहे करोड़ों गांववासियों की स्थिति को सुधारना कोई हंसी खेल नहीं है। ग्रामीण इलाकों की विषम परिस्थितियों के बीच जन समुदाय में गहरे तक जमी अंधविश्वासों की काली परत को उखाड़ने के लिए स्वयंसेवी तथा गैर सरकारी संगठनों को साथ लेकर चलना बड़ा जरूरी है ताकि स्थानीय लोगों की भागीदारी कदम कदम पर साथ रहे और चल रहे प्रयासों को सफलता प्राप्त हो सके।

ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं के योगदान को महत्व दिया जाना लोकतांत्रिक दृष्टि से भी उचित है। इस काम को नियोजित तरीके से करने के लिए केन्द्रीय स्तर पर सन् 1986 में लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कापार्ट) का गठन किया गया था। यह परिषद् स्वैच्छिक संस्थाओं के ग्रामीण विकासार्थ किए गए प्रयासों को प्रोत्साहित करती है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं किफायती प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय करने, उनका पता लगाने, हस्तान्तरित करने, सूचनाओं के संग्रह तथा उपलब्ध कराने का कार्य परिषद् द्वारा किया जाता है। पर्यावरण सुधार एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायता, प्रचार-प्रसार एवं प्रशिक्षण आदि गतिविधियों में सहायता देकर प्रोत्साहित करना परिषद् के उद्देश्यों में सम्मिलित है।

स्वैच्छिक संस्थाओं का मतलब उन संस्थाओं से है जो भारतीय संस्था अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हो तथा अपने सदस्यों के सहयोग से स्वेच्छा के आधार पर लोक कल्याणकारी कार्यों में लगी हो। हमारे देश में समाज कल्याण के क्षेत्र में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएं कार्य कर रही हैं जिन्हें राज्य एवं केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा आर्थिक सहायता एवं मार्गदर्शन की सुविधा प्रदान की जाती है। लेकिन इन स्वैच्छिक संस्थाओं में से अधिकांश शहरी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। उनके द्वारा किये जा रहे सफल प्रयासों तथा उनकी उपलब्धियों को देखने के बाद यह तथ्य स्वीकार किया गया कि ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं के योगदान को अधिकाधिक गुणात्मक और सार्थक बनाने पर बल दिया जाने लगा।

"संघे शक्ति सर्वदा" का अर्थ केवल श्रमिक संगठनों के बैनर्स पर ही अंकित होकर न रह जाए। इस दृष्टि से ग्रामीण इलाकों में रचनात्मक कार्य कर रही स्वैच्छिक संस्थाओं को भी आगे बढ़कर वह सब करने के अवसर दिए जा रहे हैं जिनकी आज के समय में आवश्यकता है। यही कारण है कि देश के विभिन्न इलाकों में कार्यरत स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा प्रसारित ग्रामीण विकास से सम्बन्धित परियोजनाओं में से अधिकांश, आवश्यक संशोधन के बाद 'कापार्ट' द्वारा मंजूर कर ली जाती हैं।

हमारे देश में स्वैच्छिक संगठन ग्रामीण विकास के लिए जो महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं वह विविध क्षेत्रों में हो रहा है। कुछ प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं :–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास से सम्बन्धित परियोजनाएं।
2. पेयजल की समस्याओं का निवारण।
3. कम लागत के मकानों का निर्माण।
4. कम लागत के शौचालयों का निर्माण।
5. विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण गतिविधियों का संचालन।
6. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अन्तर्गत लाभ प्राप्त कर चुके ग्रामवासियों के संगठन।
7. केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम।

स्वैच्छिक संस्थाओं के सदस्य अपनी दिनचर्या में से थोड़ा-थोड़ा सा समय निकालकर सामूहिक हितों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में जो सराहनीय कार्य करते हैं उससे सरकार का काम आसान हो जाता है क्योंकि स्वैच्छिक संस्थाएं उनमें चेतना उत्पन्न करती हैं। युवाओं के सहयोग से राष्ट्रीय स्वैच्छिक योजना का सूत्रपात भी देश में इसी उद्देश्य से किया गया था जिसमें चेतना संघ बनाकर विकास कार्यों में योगदान किया जाता था। दरअसल ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी बहुत सी चुनौतियां हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और वैज्ञानिक, दृष्टिकोण विकसित करने के लिए बहुत कुछ किए जाने की जरूरत ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महसूस की जाती है।

अनेक स्वैच्छिक संस्थाओं ने हमारे देश में बहुत से रचनात्मक कार्य किए हैं क्योंकि किसी भी विकासशील एवं लोकतांत्रिक राष्ट्र में ऐसी संस्थाएं भी खरा सोना हो सकती हैं जो अपने योगदान की कसौटी पर खरी उतरती हैं। लेकिन ध्यान देना है कि हमें इस सोने को लोहा नहीं बनने देना है। यानि कि निहित स्वार्थ और गड़बड़ियों की कालिख संगठनों के नाम पर नहीं पोतनी है वरना यह हमारी अक्षम्य भूल होगी क्योंकि अभी देश के अधिसंख्य ग्रामीण इलाकों में विकास के लिए बहुत कुछ किया जाना शेष है तथा यह यात्रा बहुत लम्बी है।

दरअसल स्वैच्छिक संस्थाओं को ग्रामीण विकास की विभिन्न परियोजनाओं के लिए जो आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है उसका उद्देश्य गांववासियों की बुनियादी जरूरतें पूरी करना होता है। साथ में यह भी कोशिश की जाती है कि ग्रामवासियों में नव-जागृति एवं चेतना का ऐसा संचार हो जिससे कि उनका रहन-सहन, सोचने तथा काम करने का ढंग समुन्नत हो सके। देहाती इलाकों में बसे अशिक्षित, गरीब और भोले-भाले लोग कम से कम अपना हित और अहित की समझ रखने योग्य बन सकें। उदासीनता के स्थान पर वह सजग रहें और उपयुक्त प्रौद्योगिकी के सहारे अवसरों को अपने अनुकूल बना सकें।

ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अशिक्षा के अन्धकार को अभाव और वहां की परिस्थिति ने और भी अधिक घटाटोप किया है। लेकिन यदि किसी क्षेत्र में एक भी शिक्षित व्यक्ति लोक कल्याण के लिए समर्पण की भावना से जुड़ जाता है तो समझिए कि उसने पूरे इलाके की काया ही पलट कर रख दी है। ग्रामीण विकास के लिए 1986 में पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित कृष्ण देव दीवान जैसे लोग हमारे देश में अपने सिद्ध और सक्रिय चरित्र के ऐसे उदाहरण रहे हैं जो भारतीय ग्रामीण समाज के इतिहास में अमर रहेंगे। हरियाणा का नीलोखेड़ी क्षेत्र हो या बिहार का वैशाली अंचल, आज बच्चा बच्चा उस व्यक्ति को जानता है जिसने किसानों के संगठन बनाए और सबके सहयोग से निर्मित स्वैच्छिक संस्थाओं की मदद से सम्भव कर दिखाया।

इसलिए यदि हमें ग्रामीण विकास का सपना पूरी तरह से सच करना है तो अपने देश को विकास के रास्ते पर आगे बढ़ाना है। गरीबी की रेखा से नीचे जिन्दगी बसर करने वालों में आशा की किरण का संचार करना है और कुल मिलाकर ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण करना है तो स्वैच्छिक संस्थाओं के योगदान को अधिकाधिक बढ़ाना होगा, सार्थक करना होगा।

स्वैच्छिक संस्थाओं में ग्रामीण युवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। सात वर्ष पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार वर्ष 1985 को इसलिए "अंतर्राष्ट्रीय युवा वर्ष" के रूप में मनाया गया था ताकि विश्व भर के युवाओं की समस्या पर ध्यान आकृष्ट किया जा सके। साथ ही उनकी समस्याओं के बुनियादी कारणों की खोज के अलावा उन्हें हल करने की दिशा में पहल की जा सके। इसी सन्दर्भ में अपने देश में भी उस वर्ष अनेक कार्यक्रम आयोजित किए गए थे। युवाओं के लिए उनकी उत्कृष्ट सेवाओं को देखते हुए राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किए जाने की परम्परा शुरू की गई थी जो आज भी चल रही है। यह बात अलग है कि देश के अधिसंख्य युवक युवतियां इन बातों से आज भी अनभिज्ञ हैं किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अधिसंख्य युवा आज भी प्रयास कर रहे हैं कि विकास हो।

भारत की आत्मा का वास गांवों में है। अतः युवा शक्ति का उपयोग ग्राम विकास में किया जा सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमारी केन्द्र सरकार ने ऐसे विभिन्न कार्यक्रम चला रखे हैं जो हमारे ग्रामीण युवकों को सही दिशा देने में सहायक एवं सफल सिद्ध हुए हैं। उन्हें और अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास किये जा रहे हैं जो इस बात का शुभ संकेत है कि अब गांवों की विकास यात्रा में युवाओं की भागीदारी नए सिरे से सुनिश्चित हो सकेगी। यद्यपि गांवों में जो बदलाव आया है उसमें हमारे युवाओं की भूमिका सर्वोपरि है। किन्तु उन्हें और अधिक रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सके, ऐसे कार्यक्रमों की अभी और आवश्यकता है। रचनात्मक कार्य करने की दिशा में युवा शक्ति का उपयोग करने हेतु स्वतन्त्रता प्राप्ति के एक वर्ष बाद उ०प्र० में एक युवक दल का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य गांवों में जन-स्वास्थ्य सुरक्षा की दूसरी पंक्ति के रूप में रहते हुए विभिन्न विकास योजनाओं में सहयोग करना था। बाद में इसका नाम प्रादेशिक विकास दल कर दिया गया। 1956 में जो नीतियां भारत सरकार ने युवा कल्याण के लिए बनाई थीं उसके अन्तर्गत इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि ग्रामीण विकास के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा जो विभिन्न योजनाएं चलाई जा रही हैं उन्हें इस प्रकार क्रियान्वित किया जाए ताकि बेरोजगार ग्रामीण युवकों को अधिकाधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकें। किन्तु सर्वांगीण ग्रामीण विकास के

लिए हमें व्यक्तिगत स्वार्थ की संकीर्ण भावना को त्यागना होगा। अपनी भूलों को सुधार कर उनसे सबक लेना होगा । अपनी मान्यताओं का नए सिरे से जीर्णोद्धार करना होगा और प्रत्येक देशवासी को यह संकल्प करना होगा कि हम यथा समय अर्थदान अथवा समयदान की आहुति ग्रामीण क्षेत्रों के विकास तथा वहां के निवासियों के विकास का जो महायज्ञ चल रहा है उसमें देंगे । क्योंकि यह हमारा कर्त्तव्य और सामाजिक दायित्व है । हमारा अंशदान होना बहुत आवश्यक है । विकास में सहायता देने का कार्य हम स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से सरलतापूर्वक कर सकते हैं । हमारे इस संकल्प से ग्रामीण विकास में लगी स्वैच्छिक संस्थाओं की स्थिति सुदृढ़ हो सकेगी और उनका योगदान कहीं ज्यादा सार्थक सिद्ध होगा । यह सुखद संयोग है कि हमारे शहर आज तरक्की की जिस रोशनी से चमक रहे हैं, वे कुछ वर्ष पहले ऐसे नहीं थे। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति जो पहले थी वह आज नहीं है और जो स्थिति आज है निश्चय ही कल नहीं रहेगी । लेकिन उसमें बेहतर सामूहिक सहयोग चाहिए ताकि स्वैच्छिक संस्थाएं भी सक्रिय होकर अधिक से अधिक अपना काम कर सकने में सक्षम हो सकें ।

आजादी के बाद का जो समय पिछले चार दशकों में निकला है उसमें बहुत बड़ा बदलाव ग्रामीण क्षेत्रों में आया है । ग्रामीण जन जीवन में भी सुधार हुआ है । शिक्षा, सड़क, स्वास्थ्य और संचार जैसी बुनियादी सुविधाएं अब ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से कहीं बेहतर हैं । स्वैच्छिक संगठन इस विकास यात्रा को और भी अधिक तेजी के साथ आगे बढ़ा सकते हैं । लेकिन एक महत्वपूर्ण बात यह है कि विकासार्थ जो भी कार्य अब तक इन संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में हुआ है अथवा हो रहा है उसकी विस्तृत जानकारी स्थानीय भाषा में प्रभावी ढंग से और व्यापक तरीके से दी जानी चाहिए ताकि गांव वासियों को उसके विषय में पता चल सके और कोई बात दबी छिपी न रह सके ।

यह कटु सत्य है कि हमारे गांव पिछड़ेपन के जिस अंधेरे से ग्रस्त हैं उसे केवल ज्ञान का प्रकाश ही दूर कर सकता है । गांव में रहने वालों को उपयुक्त टैक्नोलॉजी से अवगत कराने, उसे सिखाने तथा उसके लाभकारी परिणामों के बारे में बताने के लिए बहुत समय और मानव संसाधनों की आवश्यकता होगी । अतः इसमें वेतन प्राप्त कर रहे सरकारी कर्मचारियों की जिम्मेदारी मान लेना या उनके ऊपर निर्भर रहना ना काफी है। इस विशाल कार्य में तो हमें और आपको, सभी को किसी न किसी रूप में थोड़ा बहुत सहयोग देना आवश्यक है । स्वैच्छिक संस्थाएं इस सच को उजागर करती हैं तथा इसी मूलभावना के आधार पर कार्य करती हैं ।

हमारे देश में ग्रामीण विकास के लिए इतनी अधिक स्वैच्छिक संस्थाएं कार्य कर रही हैं कि यदि वे अपनी भूमिका का निर्वाह सही ढंग से करें, परस्पर समन्वित योगदान करें तो प्रत्येक गांव वासी उत्साहित होकर उत्थान के लिए कृतसंकल्प हो जाए तो वह दिन दूर नहीं जबकि हमारे गांव पूर्ण विकसित गांव होंगे। लेकिन इसके लिए प्रत्येक गांव वासी को उसके कर्त्तव्यों का बोध कराना होगा । उसे खुद कर्मशील बनने की प्रेरणा देनी होगी। यह कार्य स्वैच्छिक संगठनों द्वारा सरलता से किया जा सकता है । केवल भौतिक निर्माण तक ही सक्रिय स्वैच्छिक संस्थाओं को सीमित नहीं रहना है । क्योंकि इनकी जिम्मेदारी तो इससे भी कहीं आगे की है । उन्हें तो बड़ा परिवर्तन करना है । ऐसा परिवर्तन, जिसमें ग्रामीणों का सही मायने में विकास हो सके विनाश नहीं ।

आज हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की जो गंगा प्रवाहित हो रही है और न जाने कितने नदी-नाले उसे दूषित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं । अतः उसके जल की निर्मलता को संरक्षित करने के लिए प्रभावी उपाय भी किए जाने बेहद जरूरी हैं । बशर्ते इसका प्रभाव प्रतिकूल न हो । आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में जो शक्ति सोई पड़ी है उसे जगाया जाए । क्योंकि स्कूल, अस्पताल, सड़क और पंचायत घर के निर्माण मात्र से तब तक कोई लाभ नहीं होने वाला है जब तक कि उनका सदुपयोग और रखरखाव करने में स्थानीय लोगों की दिलचस्पी न हो ।

प्रायः वृक्षारोपण होता है और पौधे जड़ पकड़ने से पहले ही सूख जाते हैं । सिर्फ इसलिए कि उनका रखवाला कोई नहीं होता । कोई उनसे वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से इतना जुड़ा नहीं होता कि उनकी देखभाल कर सके लेकिन जहां भी पौधे को बढ़ने का अवसर मिल जाता है । वहीं वह कुछ वर्षों में भारी भरकम हो जाता है । शीतल छाया और स्वादिष्ट फल और अन्य लाभों का उपहार देना शुरू कर देता है । यही बात हमारे गांवों के विकास और स्वैच्छिक संस्थाओं पर भी लागू होती है । जिस किसी संस्था को निष्ठावान संचालक मिले वही संस्था मील आदर्श बन गई । उसने न केवल अपने कार्य क्षेत्र में ही क्रान्ति कर दिखाई बल्कि अन्य क्षेत्रों तक अपनी सुगन्ध फैलाकर लोगों

को आकर्षित किया और उन्हें भी अपनी राह पर चलने की प्रेरणा दी ।

हमारे देश में सफल स्वैच्छिक संस्थाओं के आकाश में बिहार की "वैशाली एरिया साल फारमर्स एसोसिएशन" (वास्का) तथा दाउदनगर एसोसिएशन (दासफाकों) आदि ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिन्होंने गरीब किसान और मजदूरों के सिंचाई दल बनाकर, सामूहिक ट्रैक्टर खरीदकर ट्यूबवैल लगाकर, ऊसर भूमि का सुधार करके तथा सम्मिलित विपणन व्यवस्था को अपनाकर एक तरफ कृषि के मोर्चे पर सफलता प्राप्त की है और दूसरी ओर शिक्षा, स्वास्थ्य और यातायात की सुविधाओं में सुधार करके ग्रामीण विकास को नई गति प्रदान की । सफलता की ऐसी कहानियों को ग्रामीण क्षेत्रों में जन जन तक पहुंचाने की आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढ़ियां उन्हें सच्ची लोक कथाओं के रूप में ग्रहण करें और उनसे सीख ले सकें ।

प्रायः कहा जाता है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता । बात सही है, लेकिन एक अकेला व्यक्ति चाहे तो सद् उद्देश्यों के लिए अन्य लोगों को प्रभावित अवश्य कर सकता है । उनसे मदद ले सकता है तथा अपने साथ काम करने के लिए प्रेरित कर सकता है । अपने संगी-साथियों का सहयोग लेकर उनके सुझावों का आदर करके ही एक स्वैच्छिक संस्था का प्रवर्तन, संचालन और कार्यान्वयन किया जा सकता है । आज ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे लोगों की ही आवश्यकता है जो निजी स्वार्थ के स्थान पर सामूहिक हितों की रक्षा करने का कार्य हाथ में ले सकें । सवाल यह उठता है कि ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संस्थाएं कार्य कर रही हैं उनके योगदान को और कैसे अधिक से अधिक सार्थक किया जा सकता है । इस दृष्टि से देखा जाए तो निम्न सुधारों की आवश्यकता तत्काल महसूस होती है–

* स्वैच्छिक संस्थाओं का मार्गदर्शन प्रभावी किया जाए ।
* उनके कार्यों का प्रचार व्यापक किया जाए ताकि अन्य लोग उससे प्रेरणा ले सकें ।
* लक्ष्यों की पूर्ति सिर्फ धनराशि के उपयोग आधार पर न की जाए ।
* ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदर्शनियों के माध्यम से जानकारी दी जाए ।
* राष्ट्रीय स्तर पर सूचना केन्द्र की स्थापना हो जो इस सम्बन्ध में इच्छुक व्यक्तियों को अपेक्षित जानकारी तुरन्त दे ।
* कापार्ट जैसी नोडल एजेन्सी के क्षेत्रीय कार्यालय खोले जाएं ।
* ग्रामीण विकास और स्वैच्छिक संस्थाओं के योगदान पर खुली बहस, चर्चाएं, सेमिनार आदि किए जाएं ताकि नए सुझाव प्राप्त हो सकें ।
* मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण किया जाए ।
* अनुदान प्राप्त स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा धन के उपयोग पर कड़ी नजर रखी जाए ।

देश के विभिन्न राज्यों में स्वैच्छिक आधार पर ग्रामीण विकास के लिए कार्य करने वालों को अनेक अवसर देने की दिशा में जो काम हुआ है अथवा हो रहा है उसे व्यावहारिक बनाए जाने पर भी विशेष बल दिए जाने की आवश्यकता है । उ०प्र० में प्रादेशिक विकास दल और युवक मंगल दल आदि संगठन ग्रामीण क्षेत्रों में रहकर स्थानीय विकास करने की दिशा में अग्रणी हैं तथा यह एक अच्छी पहल कही जा सकती है । लेकिन इसे और भी ज्यादा सक्रिय तथा व्यापक किए जाने की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

उ०प्र० में ग्रामीण इलाकों के युवकों को लाभान्वित करने के उद्देश्य से अप्रैल 82 में प्रादेशिक विकास दल के मुख्यालय पर युवा कल्याण निदेशालय की भी स्थापना की गई ताकि युवा शक्ति का सदुपयोग ग्रामीण क्षेत्रों को उन्नत करने के लिए किया जा सके । उ०प्र० में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए समर्पित प्रादेशिक विकास दल के अलावा ग्राम स्तर से राज्य स्तर तक एक दूसरा स्वयंसेवी संगठन युवक मंगल दल के नाम से संगठित है । इसके सदस्यों की आयु सीमा 15 से 35 वर्ष रखी गई है । इन दलों को सोसायटीज एक्ट के अन्तर्गत रियायती शुल्क लेकर पंजीकृत किया जाता है । ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए कार्यक्रम आयोजित करने के अलावा युवक मंगल दलों का सबसे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य यह है कि इसके अन्तर्गत ऐसे नियोजित प्रयास किए जाते हैं जिनसे युवा वर्ग ग्रामीण विकास कार्यों में रुचि लेकर अपना हाथ बंटा सकें ।

युवक मंगल दल के युवा गांवों में दैनिक जीवन को समुन्नत करने वाली नई-नई विधियों की जानकारी प्राप्त करके उन्हें दूसरों तक पहुंचाते हैं । विचार गोष्ठियों, मेलों, प्रदर्शनियों और पोस्टरों के माध्यम से शिक्षा, कृषि, सहकारिता एवं जन स्वास्थ्य के प्रति अनुकूल वातावरण तैयार करते हैं । ग्रामीण खेलकूद एवं प्रौढ़ शिक्षा में विकास कार्यकर्ताओं की पूरी सहायता करते हैं जो निश्चय ही हमारे भविष्य का शुभ संकेत है । उ०प्र० में ऐसे 72367 युवक मंगल दल तथा 38318 महिला मंगल दल कार्य कर रहे हैं ।

युवा कल्याण एवं प्रादेशिक विकास दल उत्तर प्रदेश की

विशेष उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

– विभाग के लगभग 70,000 स्वयंसेवकों को वर्दी देकर बिना रायफल के प्रशिक्षित किया गया तथा केन्द्रीय प्रशिक्षण केन्द्र में माह नवम्बर 91 तक 5 मण्डलों के 415 स्वयंसेवकों को रायफल के साथ प्रशिक्षित किया गया है ।

– अब तक 318 व्यायाम शालाओं की स्थापना हो चुकी है तथा वर्ष 1993 में 24 व्यायाम शालाओं की स्थापना की जानी है ।

– अब तक प्रत्येक विकास खण्ड के प्रथम, द्वितीय, तृतीय महिला मंगल दलों को एक-एक सिलाई मशीन के साथ रुपये 1,000/-, 500/- एवं 300/- की नकद धनराशि विभाग द्वारा दी गई है ।

– गोण्डा जनपद के 23 प्रतिभागियों का एक दल रूपकुण्ड साहसिक कार्यक्रम के लिए भेजा गया, इसके अतिरिक्ति जनपद सिद्धार्थनगर के 14 प्रतिभागियों द्वारा रोप राइडिंग तथा जनपद पिथौरागढ़ के प्रतिभागियों के दो दल साइकिल कार्यक्रम में भेजे गये ।

– 20 अक्तूबर, 91 को उत्तरकाशी में आई विपदा से राहत कार्य के लिए जनपद टिहरी के 150, चमोली में 150 तथा उत्तरकाशी में 200 प्रादेशिक विकास दल के सदस्यों को ड्यूटी पर लगाया गया तथा भूकम्प पीड़ितों की आवास समस्या हेतु टैन्ट लगाए गए तथा 65 जर्सी एवं 77 कम्बल भी वितरित किए गए ।

– भारत सरकार की योजना के अन्तर्गत युवा कल्याण निदेशालय द्वारा दिनांक 17 से 21 अक्टूबर 91 तक राष्ट्रीय एकता शिविर सारनाथ (वाराणसी) में आयोजित की गई । इसमें 15 राज्यों के 500 युवक-युवतियों ने भाग लिया । कर्नाटक सरकार द्वारा आयोजित शिविर हेतु राज्य से 27 युवकों को माह सितम्बर से नवम्बर 1991 तक भेजा गया । इसके अतिरिक्त युवा कल्याण विभाग द्वारा लखनऊ मुख्यालय पर एक शिक्षा कार्यक्रम का आयोजन किया गया है जिसमें इसके अतिरिक्त प्रौढ़ों को साक्षर बनाया जा रहा है । युवक व महिला मंगल दलों में खेलकूद के साथ विकास कार्यों में सहभागी बनाने के लिए सदस्यों को सक्रिय किया जा रहा है । अभी तक युवक व महिला मंगल दलों को पांच साल में 100 रुपये दिया जाता था । अब उ०प्र० सरकार ने प्रतिवर्ष नकद धनराशि के स्थान पर 500 रुपये की खेल सामग्री देने का निर्णय लिया है । विकास कार्यों में भागीदारी के लिए सरकार इस संगठन को छोटे निर्माण कार्यों को सम्पन्न करने की जिम्मेदारी भी सौंपेगी । ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं के योगदान का जो इतिहास भविष्य में लिखा जाएगा ऐसे कदम निश्चय ही उसमें एक नया अध्याय साबित होंगे । बस अब तो हमें और आपको आपस में मिलकर अपनी-अपनी जिम्मेदारियों को निभाना है। क्योंकि स्वैच्छिक संस्थाएं भी तो सब हमारी आपकी ही हैं और हमें अपने गांवों का विकास करना है । उनकी तस्वीर को बदलना है । यही आज के युग की मांग और लोकतन्त्र का तकाजा है ।

– हर गांववासी अपने मन में सपना जरूर संजोता है । वह आदमी चाहे गरीब हो या छोटा किसान । उसका सपना साकार हो इसके लिए जरूरत होती है एक अदद मकान और हाथ में काम की । इसके अभाव में उसकी जीना दुश्वार हो जाता है । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए गांव छोड़कर शहर की ओर भागता है । लेकिन कौशल के अभाव में वहां पर भी प्रायः ऐसा कुछ नहीं हो पाता जो आनन फानन में उसकी दुनिया ही बदल जाए । यही बात ग्रामीण कारीगरों पर भी लागू होती है ।

अतः ऐसे में ग्रामीणों को विकास का मार्ग दिखाने में स्वैच्छिक संस्थाओं के योगदान का महत्व उजागर होता है क्योंकि इन्हीं संस्थाओं से स्थानीय लोग जुड़े होते हैं । वहाँ की भाषा, भौगोलिक स्थिति एवं उस क्षेत्र से वास्ता रखने के कारण वे अधिक आसानी से अपनी बात समझा सकते हैं और काम कर सकते हैं । इस दृष्टि से स्वैच्छिक संस्थाओं से बढ़कर कोई और दूसरा रास्ता दिखाई नहीं देता जो भारत जैसे गांव प्रधान देश में इतनी अधिक सफलता के साथ ग्रामीण विकास कार्यों में अपना हाथ बंटा सके । अतः ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है साथ ही असीम संभावनाओं से ओत-प्रोत दिखाई देता है ।

एच-88, शास्त्री नगर,
मेरठ–250 005 (उ०प्र०)

संचार माध्यमों का ग्रामीण विकास में योगदान

□ देवेन्द्र कुमार द्विवेदी □

कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए चल रही तमाम योजनाओं और कार्यक्रमों की बुनियादी सफलता इस बात पर निर्भर है कि कितने लोग उनसे लाभान्वित होते हैं, किन्तु लाभ उठाने से पहले लाभार्थियों को उनकी पूरी और सही जानकारी होना बहुत जरूरी है। प्रभावी जनसंचार के अभाव में विस्तृत प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान को लोगों तक पहुंचाना असम्भव रहता है। केवल पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त व्यवहार में उतारने की बात अब पुरानी हो चुकी है। अब रेडियो तथा दूरदर्शन से यह कार्य हो रहा है। ये दोनों माध्यम हमारे विकास की गति को तेज करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। करीब 350 जिले निकट भविष्य में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र से जुड़ जायेंगे। कोई भी आदमी टेलीफोन को डायल करके सूचनाएं प्राप्त कर सकेगा। यह उदाहरण संचार क्रान्ति के क्षेत्र में अकेला नहीं है। दृश्य-श्रव्य तकनीक (आडियो विजुअल) टेक्नोलॉजी, ने कृषि एवं विज्ञान की दिशा में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया है क्योंकि यह विकासशील देशों के लिए एक प्रमुख मुद्दा है।

निर्बल वर्ग के कल्याण हेतु जो कार्यक्रम हैं उनमें यह भी आवश्यक है कि जरुरतमन्दों को उनकी खबर हो। आम आदमी की समुचित भागेदारी उसमें तभी निश्चित हो सकती है जब कि गरीबों को उनके लिए चल रही योजनाओं का लाभ मिल सके। क्योंकि जन सहयोग के अभाव में प्रत्येक कार्यक्रम थोपा हुआ सा लगता है और जन-सहयोग प्राप्त करने की दिशा में भी जनसंचार के साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

सरकारी नीतियों तथा विकास कार्यक्रमों का संदेश गांवों तक पहुंचे, इसके लिए हमारे देश में मौजूदा संचार-तन्त्र का जो व्यापक ढांचा है, उसमें पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, टी.वी. और ग्राम्य स्तरीय कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। नियोजित प्रयास के बाद आज हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश ने अब तक जो सफर किया, हरित क्रान्ति, जन स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में जो उपलब्धियां रही हैं, उस सबमें हमारे नये-पुराने संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हम जिस पर गर्व कर सकते हैं लेकिन साथ ही हमें इस दिशा में सभी मानव शक्ति और खर्च की गई विशाल धनराशि को भी देखना होगा और उसमें अधिकतम लाभ उठाने की कोशिशें हमें करनी होंगी। क्योंकि देश में करीब 40 प्रतिशत आबादी आज भी गरीबी की रेखा के नीचे हैं। उसकी हर सम्भव मदद की योजनाएं चल रही हैं। लेकिन उन्हें खबर क्यों नहीं इस दिशा में स्वैच्छिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। अतः उनसे आशा की जा सकती है।

ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की गति में जो तेजी आई है उसके हालात बदले हैं। गांववासियों के प्रयास, भरपूर कृषि उत्पादन अथवा रोजगार के साधनों में वृद्धि, उसका कारण रही, लेकिन अंततोगत्वा सूचना हस्तांतरण की निरंतर प्रवाहित प्रक्रिया को भी उसका श्रेय दिया जाता है।

जन संचार के क्षेत्र में जहाँ हमारे देश में आज भी कठपुतली जैसे परम्परागत माध्यम प्रचलित हैं वहां दूसरी और रेडियो तथा दूरदर्शन के अलावा स्लाइड तथा वीडियो के पांव भी गांवों की तरफ बढ़ रहे हैं। प्रवासी भारतीयों की एक संस्था ने कहा है कि वह देश भर के ग्रामीण इलाकों में करीब दस हजार वीडियो गृह स्थापित करेगी। देर सबेर इस नवीनतम प्रौद्योगिकी और इलेक्ट्रानिक क्रान्ति के सुपरिणाम महानगरों में से होते हुए गांवों तक पहुंचेंगे। किन्तु यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक होगा कि सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के ये शब्द और चित्र अपना दुष्प्रभाव न छोड़ें अर्थात् ऐसे कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए, जिनसे भोले-भाले ग्रामवासियों के बीच वैचारिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो। साथ ही साथ उनकी समस्याओं को उन्हीं के स्तर पर सुलझाने में भी मदद मिल सके जिसकी वे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

संचार और विकास में जो व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाएं निजी क्षेत्र में हैं उसमें पाठकीय रुचि के अनुसार सामग्री रहती है। इसमें अधिकांश समाचार सामग्री रहती है तथा सनसनीखेज समाचार मिलते हैं। लेकिन हमारे देश ने आजादी के बाद से नियोजित विकास का जो सफर पूरा किया है उसके बारे में छापने की जिम्मेदारी प्रायः सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग के विज्ञापनों या फिर दृश्य प्रचार निदेशालय की होती है। जबकि

प्रत्येक विकासशील देश में और खासकर विकासोन्मुखी लेखन को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ताकि अनछुए बिन्दुओं पर भी गहन विश्लेषण सम्भव हो सके ।

संचार के जितने भी साधन हैं, उनमें सबसे अधिक सरल और स्थायी प्रभाव छोड़ने का माध्यम है– हमारे अखबार । इसलिए सिर्फ; गांवों के ही नहीं वरन् समूचे राष्ट्र के निर्माण और विकास में ये जो भूमिका अदा कर सकते हैं, उतना दूसरा नहीं । प्रत्यक्ष जनसंपर्क को उभारने की दृष्टि से उदाहरणार्थ पूर्वी उत्तर प्रदेश के गांवों में प्रदेश सरकार ने विश्व बैंक की सहायता से एक योजना तैयार की, जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की नई-नई सूचना किसानों तक पहुंचाने और उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित करने और राज्य के ग्रामीण विकास को उन्नत दिशा देने के लिए "किसान सहायकों" की नियुक्तियां की गईं । इन संचारकों के द्वारा हरित-क्रान्ति का लाभ लघु एवं सीमान्त कृषकों को भी मिलना सुनिश्चित हो सका । इसके द्वारा जहाँ एक ओर छोटे किसानों तथा निर्बल वर्ग को सूचना मिलने में सुविधा मिली, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण संचार को और अधिक प्रभावी बनाया गया, क्योंकि ऋण, खाद, बीज आदि उपलब्ध कराने के लिए तो गांवों की सहकारी समितियों, बैंक और विभिन्न एजेंसियां हैं, लेकिन सूचना के लिए कोई संस्था नहीं है। अतः संचार के अन्य साधनों में रेडियो, टी०वी० फिल्म, स्लाइड, प्रदर्शनी पोस्ट मुद्रित सामग्री तथा कठपुतली जैसे परम्परागत माध्यमों के द्वारा आम जनता तक उनकी जरूरत के संदेश पहुंचाने का कार्य योजनाबद्ध ढंग से चलाया जाना चाहिए । उसी के फलस्वरूप विकास की रोशनी गांवों में उतरेगी। अब लोगों ने जिन्दगी को नये अर्थ में समझा और जाना है अतः यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि हमारे गांवों के सर्वांगीण विकास तथा बहुमुखी प्रगति में संचार माध्यमों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनेक सम्भावनाओं से भरे भविष्य में अभी आगे भी बहुत कुछ करना शेष है क्योंकि विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा प्रचार के नाम पर जो साधन और सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं उनमें अभी और तेजी के साथ समन्वित प्रयास किये जाने जरूरी हैं ।

परम्परागत माध्यम से हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्रों का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ सड़क, स्वास्थ्य और शिक्षा की क्या व्यवसथा है तथा उसमें गांववासियों का क्या योगदान और भूमिका है । किस तरह इन बुनियादी जरूरतों को पूरा किया जाना है तथा बाद में उनका रख-रखाव कैसा है । जिम्मेदारी का अहसास कराना आज के समय में सबसे बड़ी जरूरत है, ताकि नागरिकता का बोध उत्पन्न हो । देखना यह भी है कि ये लोग किस हद तक विकास के सन्देश को समझ रहे हैं और उससे शिक्षा ले रहे हैं ? संचार के परम्परागत माध्यमों का उपयोग इस दिशा में कारगर सिद्ध हुआ है । अतः आज इस विषय पर नये सिरे से सोचने की जरूरत है ।

लोकगीतों आदि की तरफ ग्रामवासियों का आकर्षण अब भी बरकरार है । विभिन्न क्षेत्रों में वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार यद्यपि आवश्यकतायें भिन्न हो सकती हैं । किन्तु गांव में जानकारी की जरूरत अत्यधिक है । कुछ संगठन कठपुतली के माध्यम से आज भी गांव में अपनी योजनाओं के लिए कार्यक्रम कर रहे हैं । समस्या मूल रूप से भीड़ को जुटाने की नहीं, भीड़ का ध्यान कुछ देर के लिए गम्भीरता के साथ अपनी ओर खींचने की होती है । विभिन्न समस्याओं के लिए रोचक कथानक लेकर कुछ खास आलेखों पर यदि 'शो' कराए जायें तो कठपुतली गांववासियों के लिए केवल मनोरंजन ही नहीं, वरन् शिक्षा का माध्यम भी बन सकती है क्योंकि हमारे देश में साक्षरता की दर अत्यन्त कम है और सभी ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त विद्युत आपूर्ति न होने के कारण अन्य माध्यमों का उपयोग अधूरा रहता है ।

विविधता में तो हर कोई सुख का अनुभव करता है । चाहे मनोरंजन के ही साधन क्यों न हों । हँसती-गाती और नाचती हुई कठपुतलियाँ हंसी-मजाक से भरपूर संवादों द्वारा वह सब कह सकती है कि रेडियो, टी०वी० और समाचार-पत्र सब एक तरफ रखे रह जाते हैं । डोरों से बँधने वाली कठपुतलियों के अतिरिक्त छड़पुतली, छायापुतली और दस्तानापुतलियाँ भी होती हैं । केरल, तमिलनाडु, आदि में इन्हीं का चलन है ।

अब पुतली निर्माण में नये शिल्प का विकास हुआ है । आवाज टेप रिकार्ड से निकलती है और दर्शकों को लगता है कि पुतली बोल रही है क्योंकि उसके होठ हैं, पलक झपकती है और आँख नाचती है । हालांकि यह आवाज उनके साथ मंच पर मजबूत बैट्रिलोकिस्ट ध्वनि एवं दृश्य का ऐसा खेल होता है कि जिसमें आवाज के मूल स्रोत को चतुरता से छिपा लिया जाता है । यही चतुराई दर्शक और श्रोता को आश्चर्य में डाल देती है ।

दूरदर्शन के प्रातःकालीन प्रसारण में जी साहब भी तो कमाल की हरकतें करते थे । सफल संचार के माध्यम के रूप में

(शेष पृष्ठ 26 पर)

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का भावी स्वरूप क्या हो ?

□ डॉ. प्रभु दयाल यादव □

ग्रामीण क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और सकल देशी उत्पाद में इसका पर्याप्त योगदान है। यह वह क्षेत्र भी है जहां काफी लोगों को आजीविका का साधन प्राप्त होता है। अतः यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त ऋण सहायता, मात्रा एवं लागत, दोनों ही दृष्टियों से आवश्यकता के अनुकूल हो। ग्रामीण क्षेत्र शताब्दियों से उपेक्षित रहा है लेकिन बैंकों के राष्ट्रीयकरण तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के बाद ग्रामीण क्षेत्र में बैंकों का कार्य निस्संदेह सराहनीय रहा है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना विशेष रूप से ग्रामीण विकास हेतु की गयी थी। इन बैंकों से जो अपेक्षाएं की गयी थीं, क्या उनमें पूरी तरह सफल हो पाए हैं ? क्या इन्हें कायम रखा जाये अथवा इनका विलय करके किसी अन्य रूप में स्थापित किया जाए ? प्रस्तुत आलेख में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के भूत, वर्तमान एवं भावी संभावित स्वरुपों के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की आवश्यकता

1904 में भारतीय सहकारी साख अधिनियम पास होने के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों की साख व्यवस्था सहकारी संस्थाओं द्वारा की जाती थी। लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति (1954) का एक प्रमुख निष्कर्ष यह था कि सहकारी ऋण प्रणाली कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र की ऋण संबंधी आवश्यकताओं को कारगर ढंग से पूरा करने में असमर्थ रही है। अतः वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण क्षेत्रों में संलग्नता बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की गयी। तद्नुसार 1955 में इम्पीरियल बैंक का तथा 1969 में 14 अन्य व्यापारिक बैंकों (1980 में 6 अन्य बैंको) का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् भी कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र की ओर एक मात्र रुप से ध्यान देने की आवश्यकता महसूस करते हुए 1972 में बैंकिग आयोग ने ग्रामीण बैंक स्थापित करने का प्रस्ताव किया। इस प्रकार कमजोर वर्गों के विशिष्ट लक्ष्य समूहों, जिनमें लघु एवं नाममात्र की जोत वाले कृषक, कृषि श्रमिक तथा ग्रामीण कारीगरों आदि पर विशेष ध्यान देने के लिए 1975 से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना प्रारम्भ हुई। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण देने के बहुएजेंसी दृष्टिकोण की अभिकल्पना की गयी जिसमें अब सहकारी बैंक, वाणिज्यिक बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सम्मिलित हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के प्रमुख कारण निम्न थे:

(1) देश के ग्रामीण क्षेत्रों एवं छोटे कृषकों की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहकारी ऋण संस्थाओं एवं व्यापारिक बैंकों ने पर्याप्त रुचि नहीं दिखाई। वाणिज्यिक बैंक शहरी उन्मुख दृष्टिकोण रखते थे।

(2) ग्रामीण क्षेत्रों में लघु कृषकों, कारीगरों एवं भूमिहीन मजदूरों की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने की अपेक्षा व्यापारिक बैंकों में कार्यरत शहरी मनोवृत्ति वाले कर्मचारियों से नहीं की जा सकती थी। अतः ग्रामीण साख की आवश्यकताओं के लिए ग्रामीण दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों द्वारा संचालित बैंकों की आवश्यकता महसूस की गई।

(3) वाणिज्यिक बैंकों का वेतन ढांचा काफी ऊंचा तथा प्रशासनिक लागत काफी अधिक थी। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कोष लागत वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में कम तथा प्रबन्ध व्यवस्था सहकारी बैंकों की तुलना में अच्छी समझी गई।

(4) वाणिज्यिक बैंकों में कार्यरत स्टाफ में ग्रामीण क्षेत्र की पृष्ठभूमि एवं गहन अध्ययन का अभाव था जो कि ग्रामीण क्षेत्रों को साख उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक था। इसलिए सिर्फ ग्रामीण क्षेत्र को वित्तीय सहायता मुहैया करवाने के लिए अलग वित्तीय संस्थान की आवश्यकता महसूस की गयी और इसीलिए 1975 में महात्मा गाँधी की पुण्य तिथि पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना प्रारम्भ की।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना एवं प्रगति

26 सितम्बर 1975 को राष्ट्रपति द्वारा एक अध्यादेश जारी किया गया था जिसके अन्तर्गत 2 अक्तूबर 1975 को 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद व गोरखपुर, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में जयपुर तथा बंगाल में मालदा) की स्थापना की गई। इसके पश्चात् क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं का पर्याप्त विस्तार हुआ। मार्च 1990 को क्षेत्रीय

ग्रामीण बैंक एवं इनकी राज्यवार शाखाएं निम्न प्रकार थीं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की राज्यवार शाखाएं

(31 मार्च, 1990 की स्थिति)

राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या	शामिल जिलों की संख्या	शाखाओं की संख्या
1. अरुणाचल प्रदेश	1	4	16
2. आंध्र प्रदेश	16	23	1,124
3. असम	5	21	393
4. बिहार	22	38	1,865
5. गुजरात	9	17	425
6. हरियाणा	4	11	329
7. हिमाचल प्रदेश	2	4	128
8. जम्मू एवं कश्मीर	3	10	256
9. कर्नाटक	13	20	1,095
10. केरल	2	6	269
11. मध्य प्रदेश	24	44	1,600
12. महाराष्ट्र	10	17	636
13. मणिपुर	1	8	29
14. मेघालय	1	3	50
15. मिजोरम	1	3	50
16. नगालैण्ड	1	7	8
17. उड़ीसा	9	13	819
18. पंजाब	5	10	199
19. राजस्थान	14	27	1,068
20. तमिलनाडु	3	7	208
21. त्रिपुरा	1	3	88
22. उत्तर प्रदेश	40	58	3,134
23. प. बंगाल	9	18	816
कुल	196	362	14,605

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 31 मार्च 1990 को 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल 14605 शाखाएं थीं जिनमें सर्वाधिक उत्तर प्रदेश में 3134 शाखाएँ थीं। इसके बाद बिहार में 1865, मध्य प्रदेश में 1600 तथा आंध्र प्रदेश में 1124 शाखाएँ थीं। नगालैण्ड में 8 शाखाएँ हैं जो सबसे कम हैं। इन बैंकों ने अपनी शाखाओं में पर्याप्त वृद्धि की है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और वाणिज्यिक बैंकों में अन्तर

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और वाणिज्यिक बैंकों में निम्न प्रमुख अन्तर किया जा सकता है :-

(1) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का कार्य क्षेत्र एक राज्य के एक अथवा अधिक जिलों तक ही सीमित रहता है जबकि वाणिज्यिक बैंकों का कार्यक्षेत्र पूरे देश में ही नहीं वरन् विदेशों तक भी होता है।

(2) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर तबके के लोगों, जैसे लघु एवं सीमान्त कृषकों, कृषि श्रमिकों, ग्रामीण शिल्पियों, अल्प पूंजी वाले व्यापारियों एवं उत्पादकों को सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से किया गया था, जबकि वाणिज्यिक बैंकों का कार्य क्षेत्र काफी विस्तृत है।

(3) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की ब्याज दरें सहकारी बैंकों की ब्याज दरों से कम होती हैं। वाणिज्यिक बैंकों की ब्याज दरों का निर्धारण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है।

(4) पिछले कुछ समय तक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कर्मचारियों का वेतनमान सम्बन्धित राज्य सरकार के कर्मचारियों तथा उस राज्य के स्थानीय निकायों के कर्मचारियों के वेतनमान के अनुसार केन्द्रीय सरकार द्वारा तय किया जाता था लेकिन अब इनका वेतनमान भी वाणिज्यिक बैंकों के समान कर दिया गया है जबकि वाणिज्यिक बैंकों के कर्मचारियों का वेतनमान राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित किया जाता रहा है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की तुलनात्मक कार्यनिष्पत्ति

ग्रामीण क्षेत्र को वित्त प्रदान करने वाली संस्थागत एजेंसियों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक द्वारा कृषि एवं सम्बद्ध गतिविधियों को

उपलब्ध कराया गया वित्त इस प्रकार है :-

(राशि करोड़ रुपयों में)

स्रोत	ग्रामीण शाखाओं की संख्या/ प्राथमिक इकाइयाँ	जुलाई, 1988 से जून 1989 की अवधि में जारी कुल ऋण	30 जून, 1989 को बकाया कुल ऋण
1. अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक	21,000	4007.5 (32.5)	14381.4 (46.0)
2. सहकारी समितियां	95,000	6,815.3 (55.3)	11789.4 (37.8)
3. राज्य सरकार/ ग्रामीण विद्युतीकरण निगम	–	1079.0 (8.7)	3457.7 (11.1)
4. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	14,500	430.5 (3.5)	1595.4 (5.1)
योग	–	12332.3 (100.0)	31223.9 (100.0)

स्रोत : रिपोर्ट ऑन करेंसी एण्ड फाइनेन्स (भारतीय रिजर्व बैंक) 1990-91

(कोणकों में दिये गये लम्बाकार योग के प्रतिशतांक हैं)

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से पता चलता है कि जुलाई 1988 से जून 1989 की अवधि में कृषि एवं सम्बद्ध गतिविधियों के लिए विभिन्न संस्थागत एजेंसियों द्वारा 12332.3 करोड़ रुपये का ऋण उपलब्ध कराया था जिसमें क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का हिस्सा 430.5 करोड़ था अर्थात् कुल का केवल 3.5 प्रतिशत। इसी प्रकार 30 जून, 1989 को इसी क्षेत्र में बकाया कुल ऋणों में ग्रामीण बैंकों का हिस्सा मात्र 5.1 प्रतिशत था। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण एवं कृषि विकास को वित्त प्रदान करने वाली एजेंसियों में ग्रामीण बैंकों का हिस्सा नगण्य है।

ग्रामीण बैंकों के लिए नियुक्त समितियां

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना हुए अभी 17 वर्ष ही हुए हैं लेकिन इस दौरान इनकी कार्य प्रणाली एवं कार्य निष्पत्ति के अध्ययन हेतु लगभग आधा दर्जन विशेषज्ञ समितियों की नियुक्ति की जा चुकी है जो इस प्रकार है :

- 1978 में प्रो. एम. एल. दाँतवाला समिति
- 1981 में काफी कार्ड
- 1985 में इनके व्यवहार्यता पर ए एफ सी अध्ययन
- 1986 में केलकर समिति
- 1989 में कृषि साख समीक्षा समिति (खुसरो समिति)
- 1991 में नरसिहम्मन समिति

ग्रामीण बैंकों की पुनर्संरचना हेतु प्राप्त सुझाव/सिफारिशें एवं विकल्प

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की पुनर्संरचना के लिए अब तक अनेक सुझाव/सिफारिशें प्राप्त हुए हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं :

(1) ग्रामीण स्तर की प्रभावी साख एजेंसी के रूप में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को जारी रखा जाना चाहिए।

(2) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक जीवनक्षम्य/व्यवहार्य नहीं है। अतः इनका प्रायोजक बैंकों में विलय कर दिया जाना चाहिए।

(3) अध्ययन एवं समीक्षा के पश्चात् बड़े आकार के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विभाजन कर दिया जाना चाहिए और इसी तरह के दो या उससे अधिक छोटे तथा अनार्थिक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का एक व्यवहार्य इकाई के रूप में एकीकरण कर दिया जाना चाहिए।

(4) समस्त क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को मिलाकर एक "राष्ट्रीय ग्रामीण विकास बैंक" की स्थापना कर दी जाये। इसके लिए कुछ विचारक तो यहां तक कहते हैं कि यह बैंक वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं को भी अपना लें ताकि यह बैंक देश की कृषि एवं ग्रामीण ऋण जरूरतों को पूरा कर सकें तथा दूसरी ओर वाणिज्यिक बैंक अपना सम्पूर्ण ध्यान औद्योगिक विकास एवं निर्यात क्षेत्र पर केन्द्रित कर सकें।

(5) कुछ विचारक कहते हैं कि देश में कार्यरत 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा इनकी शाखाएं इनके कार्यक्षेत्र के हिसाब से कम हैं, अतः वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं को सम्बन्धित क्षेत्र के ग्रामीण बैंकों में विलय कर दिया जाये।

(6) कुछ लोगों का मत है कि इनको वर्तमान स्वरूप में ही रहने दिया जाये लेकिन इनको वाणिज्यिक बैंकों एवं राज्य सरकार के नियंत्रण से मुक्त कर परिचालन के पर्याप्त अधिकार दिया जाये (अर्थात् इन बैंकों के कार्य में औद्योगिक, व्यापार एवं वाणिज्यिक क्षेत्रों को भी शामिल किया जाना चाहिए)। उनका मत है कि इन बैंकों के उधार ढांचे के कारण इनको हानि हो रही है।

(7) एक उपयुक्त सुझाव यह भी है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का आपस में विलय करके राज्य स्तर पर एक क्षेत्रीय बैंकों की आवश्यक विशेषताएं एवं उद्देश्यों के साथ-साथ अधिकांश

प्रशासनिक एवं औद्योगिक सम्बन्धों की समस्याओं को हल किया जा सकता है । इसके साथ ही एक राज्य में एक ही ग्रामीण बैंक होने से इनके नीति निर्देशन, वेतन ढांचा, कर्मचारियों की पदोन्नति के अधिक अवसर, औद्योगिक सम्बन्धों में एकरुपता, स्थानीय भावनाओं वाले व्यक्तियों की नियुक्ति आदि में एकरुपता लाई जा सकती है ।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास में बाधक तत्व

यद्यपि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने न केवल अपनी शाखाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त विस्तार किया है बल्कि तत्कालीन उपेक्षित कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र को पर्याप्त साख सुविधाएं मुहैया करवाई हैं । लेकिन इनके विकास में कई बाधाएं रही हैं जैसे प्रतिबंधित ग्राहकों के कारण बहुत कम व्यवसाय, शाखाओं का अति दूरस्थ स्थानों पर स्थित होना, संस्थापन लागत का अत्यधिक होना, भर्ती, मानव शक्ति नियोजन, प्रशिक्षण, औद्योगिक सम्बन्ध, कोषों के प्रबन्ध आदि अति संवेदनशील क्षेत्रों की ओर पर्याप्त ध्यान न देना, जानबूझकर ऋणों का दुरुपयोग, अनुवर्ती कार्यवाही की कमी, ऋणियों की गलत पहचान आदि कारणों ने इनकी वसूली को काफी प्रभावित किया है जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश बैंक हानि पर चल रहे हैं ।

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा तुलनात्मक रुप से अच्छी ग्राहक सेवा प्रदान करने के कारण ग्रामीण जन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की अपेक्षा वाणिज्यिक बैंकों में अपना धन जमा कराना चाहते हैं जिसके कारण इन बैंकों से कोष उधार लेने पड़ते हैं जिनका सीधा संबंध लाभ-हानि से जुड़ा हुआ है । बढ़ते हुए अतिदेयों तथा वसूली के समयानुसार न होने के कारण कोषों का पुनर्निवेश नहीं होता है तथा पुनर्वित प्रदान करने वाली एजेंसियों पर निर्भर रहना पड़ता है ।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कम लागत वाले/लघु विन्यास वाले बैंक हैं जिनमें वाणिज्यिक बैंकों की व्यावसायिकता और सहकारी संस्थाओं की स्थानीय अनुभूति का मिला-जुला रूप है, लेकिन इन बैंकों की स्थापना के कई वर्षों बाद भी अधिकांश बैंकों की वित्तीय जीवन क्षमता बहुत कमजोर है । इनकी परिचालन लागत काफी अधिक है पर ये निर्धारित दरों पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए बाध्य हैं ।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के वर्तमान अस्तित्व में परिवर्तन करने पर कठिनाइयां अवश्य आयेंगी । जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना पर लगभग 14,500 शाखाओं का एक केन्द्रीय कार्यालय द्वारा नियंत्रण करना बहुत मुश्किल होगा साथ ही यह उन मूल उद्देश्यों से भी विचलित हो जायेगा जिनके लिए ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई थी । ग्रामीण बैंकों में स्थानीय स्टाफ की नियुक्ति के कारण मैत्रीपूर्ण वातावरण उत्पन्न होगा, शहरी भावना कम करना, सस्ती साख एवं उत्तम ग्राहक सेवा जैसी बातें निहित थीं जिन पर राष्ट्रीय बैंक की स्थापना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । यहां यह उल्लेख करना यथोचित होगा कि भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिश के आधार पर की गई थी ताकि ग्रामीण क्षेत्र को भी इसका लाभ मिले लेकिन ग्रामीण बैंक के स्थान पर यह अन्तर्राष्ट्रीय बैंक हो गया ।

ग्रामीण बैंकों का प्रायोजक बैंकों में विलय करने पर औद्योगिक सम्बन्ध प्रभावित होने की आशंका है । इससे कुछ कर्मचारियों/अधिकारियों का भावी कैरियर प्रभावित हो सकता है प्रारंभिक अवधि में प्रायोजक बैंकों की लाभदायकता भी प्रभावित होगी क्योंकि ग्रामीण बैंकों की शाखाओं पर अधिक खर्चा करना पड़ेगा ।

प्रायोजक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं को ग्रामीण बैंकों में विलय करने पर परिसम्पत्तियों एवं देयताओं का निर्धारण किस प्रकार किया जायेगा । अनुषंगी संस्था की स्थापना पर यद्यपि उसके परिचालन सम्बन्धी स्वतंत्रता अधिक दी जा सकती है लेकिन कोषों से सम्बन्धित नियंत्रण तो रहेगा ही ।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना ग्रामीण विकास एवं सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए की गई थी न कि व्यापारिक उद्देश्य के लिए । अतः क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुछ करोड़ रुपये की हानि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास एवं विशाल विनियोग को दृष्टिगत रखते हुए नगण्य है । इसलिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के अस्तित्व को बनाए रखा जाना चाहिए चाहे इनका स्वरूप कोई भी हो । ग्रामीण गरीबों की लागत पर इन बैंकों के अस्तित्व पर आंच नहीं आनी चाहिए अतः यह अपेक्षा की जाती है कि नीति निर्देशक इसके मूल उद्देश्यों से विचलित नहीं होंगे ।

सहायक प्रबन्धक
राजस्थान वित्त निगम
14, अलकापुरी, उदयपुर (राज.)

ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

डॉ० एस० एस० खनका

भारत एक विशाल देश है जिसकी लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या अभी भी गाँवों में निवास करती है। भारत में तीव्र एवं सन्तुलित आर्थिक विकास की समस्या इन्हीं ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास की रही है। ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए सरकार सतत् एवम् सघन प्रयास चलाती रही है। इन कार्यक्रमों का एक संक्षिप्त सिंहावलोकन यहां प्रासंगिक लगता है।

ग्रामीण विकास - एक संक्षिप्त सिंहावलोकन

कुछ लोग भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रारम्भ सन् 1920 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा किये गये प्रयासों से मानते हैं। सन् 1938 में भी देश में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया जिसमें देश के जाने- माने बुद्धिजीवी, राजनेता एवम् प्रशासन के शीर्ष अधिकारी शामिल किये गये। स्वतन्त्र भारत में ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए प्रथम प्रयास 'सामुदायिक विकास परियोजना' (1952) से हुआ। तब से ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों का सिलसिला सतत् रूप से जारी है। सन् 1959 में पंचायती राज की स्थापना करके ग्रामीण विकास का उत्तरदायित्व पंचायती राज संस्थाओं को सौंप दिया गया। अप्रैल 1969 में एक नई योजना 'क्रैश स्कीम फॉर रूरल इम्पलायमेंट' एक निश्चित उद्देश्य से तीन वर्ष की अवधि के लिए कार्यान्वित की गई। इस योजना को देश के 350 जिलों में लागू किया गया जिसमें प्रत्येक जिले में 100 लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया। तीन वर्ष बाद 1972 में देश के चुने हुए 15 सामुदायिक विकास खण्डों में एक और ग्रामीण विकास कार्यक्रम 'पाइलट इन्टेन्सिव रूरल इम्लायमेण्ट प्रोग्राम' प्रारम्भ किया गया।

पंचवर्षीय योजनाओं मे भारत सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए आर्थिक एवं भौगोलिक क्षेत्रानुसार समय-समय पर जो अनेक कार्यक्रम चलाये हैं उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं - सघन कृषि जिला कार्यक्रम (1960), पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1962), ट्राइबल एरिया डेवलपमेण्ट कार्यक्रम (1964), सघन कृषि कार्यक्रम (1969), सघन क्षेत्र विकास परियोजना (1965), लघु कृषक विकास अभिकरण (1969), सीमान्त कृषक व कृषि श्रमिक अभिकरण (1969), सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (1971), रोजगार गारण्टी परियोजना (1972), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (1974), बीस सूत्रीय कार्यक्रम (1976), काम के बदले अनाज कार्यक्रम (1977), मरूभूमि विकास कार्यक्रम (1977), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1978), ट्राइसेम (1979), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1980), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (1983), जवाहर रोजगार योजना (1988-89) आदि।

अब तक के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का लेखाजोखा करने पर यह बात साफ तौर पर सिद्ध हो जाती है कि विभिन्न विकास कार्यक्रमों में सफलताएं मिलीं, साथ ही अनेक क्षेत्रों में विफलताएं भी हाथ लगीं। सच तो यह है कि तमाम ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के बीच में गांव बेचारा आज भी अपनी उसी हालत में पड़ा है जिस हालत में वह 40 वर्ष पूर्व खड़ा था। कुल मिलाकर, यह स्थिति विभिन्न विकास कार्यक्रमों की अप्रभाविकता को इंगित करती है। विकास कार्यों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए भारत सरकार ने अपने स्तर पर समय-समय पर ठोस प्रयास भी किये हैं। सरकार ग्रामीण विकास में संसाधनों को जनता की भागीदारी बढ़ाने के लिए स्वैच्छिक कार्य को बड़े स्तर पर प्रोत्साहन दे रही है। फरवरी 1984 में स्थापित राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कोष ऐसे संसाधनों को जुटाने में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस कोष का मुख्य उद्देश्य आयकरदाताओं को राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कोष में दिये गये दान की राशि पर शत-प्रतिशत आयकर की रियायत देते हुए उनसे ग्रामीण विकास कोष हेतु निधियां प्राप्त करना है। इसी प्रकार समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से सितम्बर 1986 में सरकार के 'लोक कार्यक्रम तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद्' (कापार्ट) नामक केन्द्रीय एजेंसी की स्थापना की है। इस एजेंसी का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास की विभिन्न परियोजनाओं को ग्रामीण जनता की भागीदारी से क्रियान्वित करने के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं तथा गैर-सरकारी एजेंसियों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। वर्ष 1989 के अन्त तक कापार्ट ने ग्रामीण विकास की 222 परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

जिस प्रकार आज के तेजी से परिवर्तित औद्योगिक परिवेश में औद्योगिक विकास के लिए प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता को एक आवश्यक शर्त के रूप स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार ग्रामीण

विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए भी इनके क्रियान्वयन में लोक सहयोग प्राप्त करना भी एक आवश्यक दशा बन चुकी है। लोक सहयोग स्वैच्छिक संगठनों या स्वयंसेवी संगठनों के रूप में प्राप्त होता है जिसकी भूमिका ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। यदि यह कहा जाए कि भारत में ग्रामीण क्षेत्र में जो कुछ भी विकास एवं सुधार हुआ है, उसमें स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है तो अनुचित नहीं होगा।

स्वैच्छिक या स्वयंसेवी संगठन का अभिप्राय ऐसे संगठन से है जिनका ध्येय व्यक्तिगत हित न होकर समुदाय का हित करना होता है। असल मे निःस्वार्थ एवं निष्ठा भाव से किया गया कार्य सर्वदा उत्तम होता है। भारत जैसे देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए इन स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका अनेक पहलुओं से महत्वपूर्ण रही है। देश का विशाल ग्रामीण क्षेत्र प्रारम्भ से ही व्यापक अन्ध-विश्वास, अशिक्षा, गरीबी, बेराजगारी एवं रूढ़िवादिता जैसी समस्याओं से ग्रसित रहा है। यह बोझिलता ही ग्रामीण विकास की सबसे बड़ी बाधा बनी है। लाचार ग्रामवासी अपनी इस दयनीय हालात को भगवान की मान लेते हैं। इन निरीह लोगों के लिए ग्रामीण विकास का एक ही मोटा अर्थ होता है - कर्ज और उस पर मिलने वाली कुछ छूट। अपनी समस्याओं को दूर करने का जिम्मा वह केवल सरकार पर समझते हैं। कई बार तो ग्रामवासियों को सरकार पर ही उनके कल्याण के लिए चलाई जा रही परियोजनाओं की जानकारी तक भी नहीं होती है। विकास कार्यक्रमों के मामले में सरकार एवं गांववासियों के बीच संचार रिक्तता अर्थात् कम्यूनिकेशन गैप बना रहता है। यदा-कदा जो भी छुटपुट विकास योजनाएं गांव की माटी तक पहुंचती हैं, वह भी बिचौलियों के हाथों का शिकार बनकर। इतना ही नहीं, जहां ग्रामीण जन यह अपेक्षा करते हैं कि यह सब जानकारी उन्हें घर बैठे-बैठे मिल जाए, वहीं दूसरी ओर सरकारी विकास अधिकारियों के लिए विशाल ग्रामीण क्षेत्र के सुदूर कोने-कोने तक पहुंच पाना काफी कठिन होता है। ऐसी स्थिति में ही स्वैच्छिक संगठनों का महत्व प्रकट होता है कि वह ऐसा सम्यक माध्यम बनेंगी जो सरकार एवं ग्रामीण जनता के बीच समन्वित ढंग से सम्पर्क सूत्र सिद्ध हों। हाल के वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों में अवश्यमेव ऐसी कुछ स्वैच्छिक संस्थाओं का प्रादुर्भाव भी हुआ है। लेकिन इन ग्रामीण संगठनों की स्थिति अपनी शहरी प्रतिरूप संगठनों से काफी भिन्न है। एक तो ऐसी स्वैच्छिक ग्रामीण संगठनों की संख्या ही काफी कम है, दूसरे जो हैं भी उनकी गतिविधियां इतनी व्यापक एवं प्रभावी नहीं हैं कि वे अपने आस-पास के इलाकों को भी प्रभावित एवं प्रेरित कर सकें।

देश में इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों की बहुत-सी समस्याएं यदि ग्रामवासी चाहें तो वे अपने ही स्तर पर किये गये प्रयासों से कारगर रूप में तुरन्त हल कर सकते हैं। यहां ऐसी कुछ मिसालें देना प्रासंगिक लगता है।

उत्तर-प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र पिछले कुछ समय से नशीले -पेय पदार्थ (देशी शराब) के सेवन से ग्रसित रहा है जिसका शिकार वहां का पुरुष वर्ग रहा है। इस सामाजिक-आर्थिक बुराई को समाप्त करने में यहाँ की स्थानीय 'महिला नशा संघर्ष समिति' ने एक अभूतपूर्व कार्य किया है। इस समिति के सदस्यों ने गांव-गांव में जाकर पीड़ित परिवारों को न केवल नशीले पेय पदार्थ के सेवन के आर्थिक-सामाजिक कुप्रभावों को सोदाहरण समझाया, अपितु परिवार सदस्यों को इस बुरी आदत का अपने परिवार स्तर से ही विरोध करने के लिए सशक्त भी किया। यही हुआ। आज स्थिति में उत्साहजनक परिवर्तन आया है।

इस क्रम में, हरियाणा के नीलोखेड़ी गांव के ग्राम सुधारक श्री कृष्णदेव दीवान का ग्राम सुधार का योगदान भी कम उत्साहजनक नहीं है। इस अकेले ग्राम सुधारक ने सरकार के आग्रह पर बिहार के पिछड़े क्षेत्र वैशाली के गांवों में स्थानीय किसानों की संस्था 'वास्का' यानि वैशाली एरिया साल फार्मर्स ऐसोसियेशन बनाकर वहाँ के कृषि विकास की काया पलट दी? भारत सरकार ने श्री दीवान को ग्रामीण विकास में उनके इस सराहनीय योगदान के लिए सन् 1986 में पदम्श्री के अलंकरण से सम्मानित भी किया। महाराष्ट्र के श्री अन्ना हजारे का ग्रामीण विकास का योगदान भी अनुकरणीय है। श्री हजारे ने महाराष्ट्र के एक सूखाग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय ग्रामवासियों को एकत्रित एवं निर्देशित करके उनके साथ मिलकर वर्षा के पानी को जलागमों में संरक्षित किया। इससे खेती को तो पानी मिला ही, साथ ही सूखे हुए कुओं में भी पीने का जल भी पुनः भरने लगा। देखते-ही देखते पाँच-छः वर्षों में ही यह क्षेत्र हरियाली के आवरण से लद गया।

संक्षेप में, यह तो ग्रामीण स्वैच्छिक संगठनों की ग्रामीण विकास में सराहनीय योगदान की चुनिन्दा मिसालें मात्र हैं। देश के विभिन्न इलाकों में पाडी यानि 'पीपुल्स एक्शन फॉर डेवलपमेण्ट' की मदद से ग्रामवासियों ने खुद मिल-जुलकर ग्राम विकास की अनेक परियोजनाएँ सफलतापूर्वक चलाई हैं।

स्वैच्छिक संगठनों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन चाहिए

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि भारतीय ग्रामीण व्यक्ति अभी भी निपट सादा एवं अपने चारों ओर की गतिविधियों से अनेकानेक कारणों से अनभिज्ञ रहता है। लेकिन वह विपुल निष्ठा

(शेष पृष्ठ 23 पर)

ग्रामीण उत्थान और स्वयंसेवी संगठन

□ आशारानी व्होरा □

ग्रामीण विकास का अर्थ है, सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास। ग्रामीण कल्याण ही राष्ट्र का कल्याण है। राष्ट्र की इकाई है, समाज या समुदाय और समुदाय की इकाई है परिवार। परिवार की इकाई सुदृढ़ होगी तो राष्ट्र-निर्माण की भीत्ति सुदृढ़ होगी। किन्तु तेजी से बदलते इस संसार में महानगरीय और नगरीय ही नहीं कस्बाई और ग्रामीण परिवार भी या तो बिखर गए हैं या बिखरने के कगार पर हैं।

इस बिखराव के अनेक कारण हैं। आबादी का भूमि पर बढ़ता दबाव। कटती और बंटती जमीन व मंहगाई। कृषि पर निर्भरता दिनों दिन कम होते जाना। ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की कमी। मांग के अनुरूप उद्योग धंधों का विस्तार न होना आदि भौतिक कारण तो हैं ही, ग्रामीण युवकों का शहरी चकाचौंध के प्रति आकर्षित होकर शहरों की ओर पलायन भी एक प्रमुख कारण है। सिनेमा, दूरदर्शन, वीडियो आदि की पहुंच यूं अब छोटे कस्बों से लेकर बड़े गांवों तक भी होने लगी है। खेती का उत्पादन बढ़ने के साथ जीवन-स्तर वहां भी बढ़ने लगा हैं पर सामाजिक नैतिक शिक्षा के अभाव में जीवन स्तर का विकास कहीं भी सही दिशा नहीं पकड़ रहा है और रोजी-रोटी की तलाश में अथवा नगरीय आकर्षण से खिंच कर नगरों महानगरों में आए ग्रामीणों की गंदी बस्तियों में विकास ने नई समस्याएं पैदा की हैं।

ग्रामीण-कल्याण के लिए गांवों से लेकर नगर-क्षेत्रों तक स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका यहीं से शुरू होती है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों के कल्याण विभागों की परियोजनाओं का जाल सारे देश में फैलाया गया है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, अखिल भारतीय महिला परिषद, भारत सेवक समाज, खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड आदि अखिल भारतीय स्वायत्त, अर्द्धशासकीय और अशासकीय संगठनों की इकाइयां भी जिला स्तर से नीचे स्थानीय स्तरों तक विकेन्द्रित हैं। फिर छोटे-बड़े अनेकों स्थानीय संगठन हैं। असीमित साधन सम्पन्न से लेकर सीमित साधनों वाले और विपन्न तक, जिनकी भूमिका का आकलन उनके साधनों से नहीं किया जा सकता। कुछ छोटे स्थानीय संगठन भी अपने सीमित या अल्प साधनों के साथ अपने-अपने क्षेत्र में बहुत उपयोगी कार्य कर रहे हैं, तो कुछ साधन सम्पन्न बड़े संगठन भी राजनीति प्रेरित या स्वार्थ प्रेरित होकर कागजी खानापूरी भी कर रहे हैं। दरअसल कार्य की गुणवत्ता निर्भर करती है, कार्यकर्ताओं पर, कहीं लगनशील सम्मलित कार्यकर्ता अकेले भी बहुत कुछ कर दिखाते हैं तो कहीं बहुजन मिल कर भी उतना नहीं कर पाते। तो साधन बहुलता और साधनों की कमी को दरकिनार करके भी देखना होगा कि जहां अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आते, वहां मूल खामी क्या है, कहां है और उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

बात फिर समाज की मूल इकाई परिवार और परिवार में भी महिला व बालक से शुरू करें: केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की प्रथम अध्यक्षा दुर्गाबाई देशमुख के शब्दों में, "एक लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है, जबकि एक लड़की की शिक्षा एक पूरे परिवार की शिक्षा है।" यहां शिक्षा से मतलब केवल साक्षरता या स्कूली शिक्षा से नहीं, व्यक्तित्व प्रशिक्षण अथवा सर्वांगीण शिक्षा से है। लड़की ही पत्नी, गृहिणी व मां बन कर पूरे परिवार का दायित्व संभालती है इसलिए वह परिवार की धुरी कहलाती है। उसका शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य ठीक होगा तो वह परिवार को ठीक से चला पाएगी। उसका शिक्षण-प्रशिक्षण ठीक होगा तो वह परिवार का कुशल संचालन करने के साथ, अपनी संतान को ठीक शिक्षा व संस्कार देकर जिम्मेदार नागरिक बना सकेगी। उसका अपना संस्कार पहले ठीक होगा तो वह आने वाली पीढ़ी को संस्कारित कर पाएगी। इसीलिए महिला वर्ष के बाद महिला दशक पर जोर दिया गया और अब बालिका वर्ष के बाद बालिका दशक मना कर सारे समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जा रहा है कि पहले वक्त का स्त्री-पुरुष, लड़की-लड़के का भेद-भाव समाप्त हो और वर्तमान टकराव से समाज को बचाया जा सकता है।

टकराव की स्थितियों से बचाव के लिए अधिकार चेतना के साथ कर्तव्य चेतना को भी जागृत रहना चाहिए। यह संतुलन ही परिवार को बिखराव से और समाज को विकृतियों से रोक सकता है। यहां पर स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका प्रमुख हो जाती है कि वह समाज को, विशेष रूप से बहुसंख्यक ग्रामीण समाज को सही ढंग से शिक्षित प्रशिक्षित करें। पहला काम होना चाहिए, समाज को विकृतियों और विखंडन से बचाने का, सामाजिक समस्याओं को नए-नए विकराल रूप धर कर सामने आने से रोकने का संस्थागत उपाय, इसके बाद

मजबूरी की स्थिति में ही अपनाए जाने चाहिए ।

उदाहरण के लिए अगर ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोग धंधों को बढ़ावा देने के साथ ग्रामीण युवाओं-युवतियों के लिए स्थानीय स्तरों पर ही स्वस्थ मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध कराए जाएं और माता पिता व किशोर बच्चों के संबंधों को टूटने-बिखरने से बचाने के प्रयत्न किए जाएं तो ग्रामों से नगरों की ओर गैर जरूरी पलायन रुक सकता है और महानगरीय गंदी बस्तियों के विस्तार, उनके साथ जुड़ी समस्याओं के विस्तार से निजात पाई जा सकती है। इसके लिए स्वयंसेवी संगठनों को आगे आना चाहिए व प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए ।

इसी तरह युवा पीढ़ी यदि वृद्धों को नए ज्ञान-विज्ञान की बातों से परिचित कराती रहे तो बदलाव के लिए स्वीकृति की मानसिकता उनमें तैयार की जा सकती है। दूसरी और युवा पीढ़ी को इसके लिए तैयार किया जाना चाहिए कि युवा लोग माता पिता को, बड़े बूढ़ों को मान सम्मान अवश्य दें, और कुछ दे सकें या नहीं, तो पीढ़ी अंतराल के झगड़े भी खत्म नहीं तो कम जरूर किए जा सकते हैं और परिवारों के बिखराव को नगरों की ओर पलायन भी रोका जा सकता है। परिवार के मधुर रिश्ते अवश्य अन्य आकर्षणों से अमर रहें तो विकृतियों की राहें अवरूद्ध हो सकती हैं। नशा-मुक्ति, अपराध-मुक्ति के लिए भी परिवार संगठन को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। स्थानीय संगठन ही इस दिशा में विशेष सहायक सिद्ध हो सकते हैं बजाए अखिल भारतीय या शहरी संगठनों के ।

इसीलिए साक्षरता-अभियान को मात्र साक्षरता तक सीमित न रख, व्यापक समाज को शिक्षा के रूप में चलाने की जरूरत है। महिला मंडल, युवा मंडल साक्षरता केन्द्रों के साथ आत्मीय ढंग की संयुक्त गोष्ठियों के माध्यम से यह उपयोगी कार्य बखूबी कर सकते हैं। नशा मुक्ति केन्द्रों, वृद्ध आवासों, नारी सुरक्षाग्रहों जैसी सुधार संस्थाओं की जरूरत कम से कम पड़े, इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और जब मजबूरी में इनका सहारा लेना अनिवार्य हो तो इनके लिए कर्मठ व समर्पित कार्यकर्ता जुटें, यह कठिन दायित्व भी समाज को लेना चाहिए। इसलिए इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

बाल-विवाह-निषेध, दहेज-निषेध जैसे कानूनों से ही ये समस्याएं नहीं सुलझ जाती। इन कानूनों का पालन कराने इसके लिए सही मानसिकता तैयार कराने की जिम्मेदारी संगठनों को लेनी है। दहेज-दाह जैसी भयानक बुराइयों की ओर यह एजेंसियां मुखातिब हैं। हिंसा, अपराध हर कदम पर भ्रष्टाचार ने आम जनजीवन असुरक्षित कर दिया है। हर ईमानदार आदमी आज दुःखी है और ताकतवर गुंडा सीना तान कर चलता है। कहां-कहां पुलिस लगाएगें ? फिर रक्षक भी तो उसी भ्रष्ट-व्यवस्था के अंग बन कर कहीं-कहीं भक्षक बन जाते हैं। ऐसे में स्वयंसेवी संगठन ही रक्षक की भूमिका भी निभाते हैं क्योंकि संगठित आवाज अनसुनी नहीं की जा सकती। हर स्थानीय संगठन को आज अपना एक वर्ग इस संरक्षक की भूमिका के लिए भी तैयार करना चाहिए कि सताए हुए लोग न्याय पाने के लिए संगठन का सहारा ले सकें।

बढ़ती आबादी हमारी सारी कल्याण योजनाओं को लील रही हैं और बढ़ती मंहगाई ने आम आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है। ऐसे में शिक्षा स्वास्थ्य पोषण की समस्या का समाधान न तो अकेले परिवारों के वश की बात रह गई है, न अकेले सरकार तक की। हम को सामुदायिक स्तर पर इन समस्याओं पर सोचना है और इन्हें हल करना है। स्वयं सेवी संगठन ही समुदाय को प्रशिक्षित कर बढ़ती आबादी पर रोक लगाने में बढ़ती मंहगाई और बढ़ते भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाने में सहायक हो सकते हैं तो स्थानीय स्तरों पर रोजगार उन्मुख सामाजिक प्रशिक्षण केन्द्र हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए, जिनके साथ मनोरंजन का पक्ष भी जुड़ा हो ऐसे स्वयं सेवी संगठन बड़े पैमाने पर सामने आएं सरकार भी ऐसे समर्थ व उपयोगी संगठनों की खोज पड़ताल कर उनकी हर संभव सहायता के लिए आगे आए, उन्हें प्रेरित कर उनकी गुणवत्ता बढ़ाए तो समस्या का समाधान मिल सकता है, समाज को दिशा मिल सकती है और राष्ट्र के निर्माण की राह खुल सकती है।

मूल आवश्यकता है, मानवीय संवेदना को फिर से जागृत करने की। यह कठिन कार्य है इसलिए कि यही अमूल्य निधि हमारे वर्तमान भारतीय समाज ने खो दी है। आसपास कितना भी कुछ घटित हो जाए हमें तब कोई फर्क नहीं पढ़ता, जब तक कि विपत्ति सीधे हमारे सिर पर न आ जाए। पर शाश्वत भावनाएं सुप्त होती हैं, कभी मरती नहीं। बुद्धिजीवी इस शाश्वत भावना को पुनजागृत करें और स्वयं सेवी संगठन अच्छे समर्पित कार्यकर्ताओं की खोज कर उन्हें इसी दृष्टिकोण से प्रशिक्षित करें तो क्या नहीं हो सकता ? साधन-संवेदना सूझ-सद्भावना और सु-शिक्षा के समन्वित प्रयास से ही यह सम्भव है, सुविधा भोगी, अनुदानाश्रित संगठनों कार्यकर्ताओं से नहीं।

यदि राष्ट्रीय संसाधनों का अपव्यय बचाना है ; स्वयं सेवी संगठनों की सफलता और सार्थकता को सुनिश्चित करना है, तो विकास के मानदण्डों का निर्धारण जरूरी है और मानदण्डों के निर्धारण के लिए नियोजन-संचालन की खामियों को, दूहराव और अपव्यय असंतुलन असंतोष का निवारण जरूरी है। समन्वित विकास के लिए समिन्वत प्रयत्न ही कारगार होंगे, अन्य कोई सीधा सरल या "शार्ट-कट" रास्ता नहीं है।

जी- 302/सेक्टर- 22 नोएडा- 201301

पर्वतीय क्षेत्रों की गतिविधियां

□ डॉ० ललित मोहन जोशी □

औद्योगिक एवं बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व में लोगों के मध्य बड़ी अशान्ति हो गई है जिसके कारण सभी लोग प्राकृतिक संतुलन के बिगड़ते स्वरूप को देखकर चिन्तित हैं। विगत कुछ समय से हिमालय क्षेत्र के पर्यावरणीय परिवेश पर अनेक लोगों द्वारा चिन्तन-मनन एवं अध्ययन किया गया। अद्भुत एवं मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्य का क्षेत्र समग्र भारत के सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को दृष्टिगोचर करता है। हिमालय क्षेत्र को आधार मानकर ही भारत के लब्ध प्रतिष्ठित मनीषियों एवं चिन्तकों ने इस क्षेत्र को अपनी साधना स्थली बनाया। औद्योगिक विकास की दौड़ में हर तरफ होड़ सी लगी हुई है। भारत के प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट श्री आर0 के0 लक्ष्मण के एक कार्टून जिसमें एक उद्योगपति को यह कहते हुए दिखाया गया था – मैंने उद्योगपति बनना क्यों छोड़ दिया... क्योंकि मैं जो भी करता था उससे ओजोन की परत को क्षति पहुंचती थी, वनस्पति नष्ट होती थी अथवा जल या वायु प्रदूषण होता था।

वर्तमान में यह बड़ी अजीब सी स्थिति विकास के संदर्भ में देखने को मिलती है, हम विकास का जो भी दावा करते हैं उससे हमारा पर्यावरण बिगड़ता जा रहा है। औद्योगीकरण की तेज रफ्तार और साथ में प्रकृति का अनियंत्रित शोषण करते जाने के कारण औद्योगीकरण से बचा कूड़ा-कचड़ा बढ़ता जा रहा है। परमाणु से उत्पन्न व्यर्थ पदार्थ व विषैले रसायन भूभाग के बड़े क्षेत्रों में वन का ह्रास व नदी, नालों, झीलों एवं समुद्रों में प्रदूषण यह सभी एक ओर जहां विकासात्मक गतिविधियां दर्शित करते हैं वहीं दूसरी ओर औद्योगीकरण के दुष्परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। निःसंदेह मानव ने अपने आराम के संसाधन जुटाने व सम्पत्ति बढ़ाने के प्रयासों में प्रकृति के नियमों की अनदेखी की है जिससे प्राकृतिक संतुलन में अव्यवस्था उत्पन्न हुई। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर यह पर्यावरण का क्रिया व्यापार क्या है– पर्यावरण उन स्थितियों एवं प्रभावों का समग्र रूप है जो प्राणियों के जीवन व विकास को किसी न किसी रूप में प्रज्जवलित करते हैं। सृष्टि के समस्त जीवित अवयवों छोटे से लेकर बड़े तक का अपना एक क्षेत्र होता है और प्राकृतिक चक्रों में होने वाले परिवर्तनों का उसके समग्र वातावरण पर प्रभाव पड़ता है क्या इस स्थिति को रोकने की जिम्मेदारी पूरी तरह देश की है, यदि हम चिन्तन करें तो हमें ऐसा लगता है कि हमारी आज की न्याय और राजनीतिज्ञ प्रणाली पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में अपर्याप्त है। अपेक्षित कानूनों की कमी, पर्यावरण की रक्षा की मानसिकता के अभाव फलस्वरूप पर्यावरण असन्तुलन से जो भावी विपत्ति समस्त भूवासियों को उठानी पड़ेगी उसका आभास हर किसी को है। स्पष्ट है आर्थिक विकास की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अर्न्तनिहित है। साधनों का अविवेक पूर्ण दोहन ही पर्यावरण असन्तुलन पैदा कर देता है जो विभिन्न भयंकर आपदाओं का जनक बनकर विनाशकारी हो जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यदि हम पर्वतांचल के विकास की बात का चिन्तन पर्यावरणीय संतुलन के संदर्भ में करें तो विरोधाभास सा लगता है। वास्तव में विकास तथा पर्यावरण एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के सहयोगी के रूप में हमारे सामने परिलक्षित होते हैं। यदि हम सीमित प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण दोहन के नियोजन की बात करें तो जहां विकास प्रक्रिया उपलब्ध संसाधन के अधिकतम दोहन की ओर मानव को प्रेरित करती है वहीं पर लाभ की प्रत्याशा में आज का मानव कम से कम समय में अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने की ओर प्रेरित होता है। अतः इस मानसिकता को दूसरी ओर मोड़ने की आवश्यकता है। जिसके लिए समाज के प्रबुद्ध वर्ग, राजनीतिज्ञ व समस्त जन समुदाय के लोगों को एक साथ मिल बैठकर चिन्तन करना होगा।

पर्वतांचल की विशिष्ट भौगोलिक संरचना, अद्वितीय प्राकृतिक सौन्दर्य, सौम्य वातावरण, जनमानस में देवी देवताओं में अटूट श्रद्धा, सादा सामाजिक जीवन, लोगों की आस्थाएं एवं मान्यताएं अपने आप में वहाँ के सांस्कृतिक वातावरण पर निःसंदेह एक अलग छाप छोड़ती है।

पर्वतीय क्षेत्र की विकासात्मक गतिविधियां एवं उनका प्रभाव जानने के लिए यह आवश्यक है कि क्षेत्र विशेष के अनुसार ही भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सम्पदा व विद्यमान विविध संसाधनों के प्रयोगों की संभावनाओं के बारे में गहन अध्ययन व चिन्तन किया जाये। पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि की प्रकृति व उसका प्रतिरूप मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा बिल्कुल अलग है। कृषि के अतिरिक्त अन्य आर्थिक क्षेत्र विकसित न हो पाने के कारण 83 प्रतिशत लोग आज भी अपना व्यवसाय खेती से ही करते हैं। विषम भौगोलिक परिस्थितियां, लोगों में अन्ध विश्वास की भावना, भूमि का उत्खण्डन, गरीबी व बेरोजगारी, कृषि योग्य भूमि की सीमितता, भूस्खलन, सिंचाई सुविधाओं का अभाव कुछ ऐसे कारक हैं

जिसके कारण पूरी तरह विकास में अवरोध आ जाता है। इसी विभाग के एक अध्ययन के अनुसार पहाड़ में 33 अंश ढाल तक खेती करने की बात की पुष्टि की है दूसरी ओर पिछले 10 साल के आंकड़ों से यह आभास हो जाता है कि लोगों में समतल/उपजाऊ भूमि में नगरीकरण की प्रवृत्ति बड़ी तेजी से बढ़ी है जो वहां की अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक सिद्ध हो रही है। उदाहरणार्थ टिहरी का अटूट क्षेत्र, धान की अच्छी उपज के लिए प्रसिद्ध है जिसके टिहरी बांध के पानी में समाहित हो जाने की संभावना है, कुमायूँ क्षेत्र में गोचर, मासी, चौकुटिया द्वारहाट, सोमेश्वर, गरुड़, बागेश्वर, पिथौरागढ़, चम्पावत व नेयरघाटी के चारों ओर गैर कृषि कार्यों के लिए जिस तेजी से कार्य हो रहा है उसे नियन्त्रित करना जरूरी होगा। पर्वतांचलों में विकासात्मक गति लाने, बागवानी, पशुपालन व वन सम्पदा का विकास कृषि के विकल्प के रूप में स्थानीय लोगों की जरूरतों को पारिस्थितिकी के अनुरूप एकीकृत किया जाये। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि का सर्वोत्तम विकल्प के रूप में फल-सब्जियाँ, विभिन्न प्रकार के पुष्प, जड़ी बूटियां ही विकास के लिए सर्वोत्तम उत्पाद हैं। कई संस्थानों द्वारा अध्ययन के उपरान्त यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि उ0प्र0 के पर्वतीय क्षेत्र में अनाज की खेती के बदले फल व सब्जियों की खेती ज्यादा उपयुक्त होगी। गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ ने अपने एक सर्वेक्षण में 14 विकास खण्डों के 76 गांवों में धान, गेहूँ, महुआ एवं अन्य छोटे अनाजों व दालों का कुल औसत उत्पादन मूल्य 182 रु0 प्रति क्विंटल निकाला जबकि फल व तरकारियों में सेब, सन्तरा, नींबू, नाशपाती तथा अन्य फलों तथा आलू का औसत उत्पादन मूल्य रुपये 242 प्रति क्विंटल पाया। अध्ययन के दौरान प्रति हेक्टेयर उत्पादन की दृष्टि से भी फलों की पैदावार अनाज की तुलना में 11 गुनी अधिक पाई गई। इसी संस्थान द्वारा हिमाचल प्रदेश व उ0प्र0 के पर्वतीय क्षेत्र में सेब की खेती के संदर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन कराया गया और अन्त में यह देखा गया कि जिन गांवों में अनाज की खेती के बजाय फलों की खेती की गई वहां पर 77 प्रतिशत अतिरिक्त मानव श्रम दिवसों का सृजन हुआ तथा क्षेत्र में अनाज के बजाय सेब की फसल उत्पादित करने पर 53 प्रतिशत अतिरिक्त आय उत्पादकों को मिली।

हिमालय क्षेत्र में समुचित सिंचाई की व्यवस्था का अभाव, उपयुक्त पैकिंग व्यवस्था का अभाव, विपणन, भंडारण व शीतगृहों का पर्याप्त विकास न होना, फल पट्टियों का मुख्य मार्ग तक सम्पर्क मार्ग का न होना आदि कुछ ऐसे कारण हैं जिसके कारण फल उत्पादन के विकास में कठिनाई आ सकती है फिर भी उपलब्ध प्राकृतिक व मानव संसाधन का समुचित प्रयोग करके नियोजित प्रक्रिया के तहत कार्यक्रमों की शुरुआत निम्न रूप में की जाये तो संभवतः विकासात्मक गतिविधियां अच्छी तरह से हो सकेंगी।

(1) कृषि कार्य के लिए जल की आवश्यकता की पूर्ति, जल स्रोतों/नालों व वर्षा के पानी को एकत्र करने के तरीकों में वृद्धि के प्रयास से विकासात्मक गतिविधियां लाने की संभावना पर चिन्तन किया जाये।

(2) स्थानीय रूप से उपलब्ध पैकिंग इत्यादि के कार्यों में लकड़ी के बजाय विकल्प के रूप में गत्ते की पैकिंग इत्यादि को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

(3) विकासात्मक क्रियाकलापों को गति देने के लिए स्थानीय स्तर पर जनप्रतिनिधि एवं महिला समूहों को एकत्रित कर पर्यावरण से सम्बन्धित ज्ञान व विकास के कार्यक्रमों का प्रचार व प्रसार लोगों में किया जाये जिनमें लोगों की जनसहभागिता अधिक से अधिक ली जाये।

(4) प्रोजेक्ट एप्रोच के रूप में स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों को लेकर प्रोजेक्ट निर्माण किया जाये तथा कुटीर उद्योग को अधिक से अधिक प्रोत्साहित किया जाये। जड़ी-बूटियों व फलों के एकत्रीकरण एवं उनका सदुपयोग करने के तरीके को भी बढ़ावा दिया जाये।

(5) मधुमक्खी पालन, खाद्य व फल संरक्षण के उत्पादन में वृद्धि की जाये तथा इससे सम्बन्धित लोगों को इन क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिलाया जाये जिसके लिए ग्राम्य विकास व कृषि विभागों से सम्बन्धित एजेंसियों की मदद ली जा सकती है।

पर्वतीय क्षेत्रों के सम्बन्ध में उद्यान, पशुपालन, वन, कृषि, शिक्षा, लोक निर्माण, ग्राम्य विकास तथा पंचायती राज आदि विभागों के द्वारा कार्यों के सम्पादन में समय-समय पर विश्लेषण एवं विवेचन किया जाता रहा है। फलस्वरूप यह भी अनुभव किया गया कि परियोजनाओं के निर्माण एवं रचना में परियोजना का उद्देश्य, परियोजना का स्पष्ट कार्य क्षेत्र, कार्यान्वयन के लिए स्पष्ट समयबद्ध सारणी, उचित लाभार्थी का चयन, परियोजना का अपेक्षित लाभ तथा उत्पाद का औचित्यपूर्ण वितरण व विपणन किया जाये तो विकासात्मक गतिविधियां अधिक हो सकेंगी।

दीनदयाल ग्राम्य विकास प्रशिक्षण
एवं शोध संस्थान, बख्शी का तालाब,
लखनऊ-227202

ढालू भूमि पर आलू की खेती – कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

□ अनिल कुमार □

आलू एक महत्वपूर्ण नकदी फसल के रूप में सारे विश्व में उगाया जाता है तथा इसका प्रयोग मुख्यतः सब्जी के रूप में किया जाता है। भारतीय आर्थिक स्थिति के अनुरूप आलू की खेती को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ताकि अधिक लाभ उठाया जा सके। आलू की खेती पहाड़ी क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर की जाती है तथा मध्यम एवं ऊंचे क्षेत्रों में आलू की फसल को बेमौसमी सब्जी के रूप में भी लगातार उगाया जाता है। कई मध्यम ऊंचाई के घाटी वाले क्षेत्रों में आलू की खेती साल में दो बार, सितम्बर-जनवरी तथा मार्च-जून के अन्तर्गत की जाती है। अधिकतर असिंचित क्षेत्रों में आलू की खेती ढालू भूमि पर की जाती है।

आलू की खेती लाइन बनाकर की जाती है ताकि सभी कृषि क्रियाएं जैसे बुवाई, सिंचाई तथा खुदाई ठीक प्रकार से की जा सके। आलू की खेती में कई महत्वपूर्ण बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है ताकि उत्पादकता बढ़ाई जा सके। आलू की भरपूर पैदावार लेने में खाद व पानी की पर्याप्त मात्रा होना आवश्यक है, अन्यथा उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आलू की खेती में पानी की मात्रा नमी के रूप में लगातार बनी रहनी चाहिये क्योंकि अधिक पानी से भी आलू के सड़ने की सम्भावना रहती है। सूखे की स्थिति में आलू के कन्द कम हो जाते हैं। फूल बनने की स्थिति से परिपक्वता तक आलू की फसल में पानी की आपूर्ति करने से उत्पादन अधिक बढ़ता है। यदि पानी की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो, तो बसंत के मौसम में वाष्पोत्सर्जन की क्रिया ठीक प्रकार होती है तथा कन्द स्वस्थ व अधिक होते हैं।

स्थानीय कृषि परिस्थितियां

पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकतर भागों में खेती केवल सीढ़ीदार खेत बनाकर की जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक ढाल के अनुरूप ही खेतों की चौड़ाई का निर्धारण किया जाता है। अन्य फसलों की तरह आलू जैसी महत्वपूर्ण नकदी फसल को भी इन क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में उगाया जाता है। ऊपरी असिंचित क्षेत्रों में भी आलू की खेती बसंत मौसम में बड़े पैमाने पर की जाती है तथा पानी की आपूर्ति केवल वर्षा पर निर्भर रहती है।

मार्च के अंत तक बोये जाने वाली आलू की फसल में आरम्भिक नमी का होना अति आवश्यक है। आलू की उन्नत किस्मों के लिये तो नमी की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। टिहरी गढ़वाल में चम्बा-मंसूर फल पट्टी पर आलू की खेती बड़ी मात्रा में की जाती है। यहां असिंचित भूमि का ढाल बहुत अधिक (100-200 प्रतिशत तक) होने पर भी आलू की खेती लगातार की जा रही है। इस क्षेत्र में पर्याप्त वर्षा के कारण आलू की फसल के साथ भूक्षरण की एक बड़ी समस्या सामने आती है तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिसके कारण लागत के अनुरूप भरपूर लाभ नहीं मिल पाता है। इस समस्या से बचने के लिए आलू उत्पादन की क्रियाओं में संशोधन करने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में आलू की लाइनें भूमि के ढाल के अनूरूप बनायी जाती हैं, जिससे वर्षा के पानी के साथ बड़ी मात्रा में उपजाऊ मिट्टी बह जाती है। हर वर्ष पर्याप्त मात्रा में रासायनिक व गोबर की खाद वर्षा से बह जाती है तथा किसानों पर अधिक खर्च पड़ता है।

आलू की बुआई के बाद लम्बे समय तक खेतों में पानी का साधन न होने पर भूमि की नमी लगातार कम होती जाती है, जिससे अंकुरण व जड़ों का पूरा विकास ठीक प्रकार नहीं हो पाता है। ढालू भूमि पर परम्परागत तरीकों से आलू की खेती ढाल के अनुरूप नाली बनाकर की जाती है जिसके कारण धीरे-धीरे ऊपरी हिस्से से नमी रिसकर निचले भागों में जमा हो जाती है तथा सूर्य की किरणें सीधी पड़ने पर वाष्पोत्सर्जन भी अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, वर्षा का पानी भी तेज गति से बहकर उपजाऊ मिट्टी बहा ले जाता है तथा पानी को रिसने का पर्याप्त समय भी नहीं मिल पाता है। अतः ढाल के अनुरूप आलू को नाली बनाकर खेती करने से भूमि तथा नमी दोनों का ह्रास लगातार होता रहता है जिससे उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए आलू की नालियों को ढाल के विपरीत बनाना चाहिये ताकि भूक्षरण के साथ-साथ नमी का ह्रास भी बचाया जा सके। इस विधि में नमी का पूरा संरक्षण होता है तथा पानी की गति कम करके भूक्षरण कम किया जा सकता है एवं पानी को भूमि में रिसने

का पर्याप्त समय मिलता है । इस विधि में ढाल के विपरीत बनी आलू की नाली के किनारों पर पानी के निकास के लिये बनी नाली को खेत के किनारे पर बनी नाली से होकर सुरक्षित ढंग से बहने दिया जाता है । ऐसा करने से खेत में पानी इकट्ठा नहीं होगा, जिससे आलू सड़ नहीं पाता है तथा पर्याप्त नमी लम्बे समय तक बनी रहती है ।

प्रदर्शन परिणाम

टिहरी गढ़वाल स्थित पर्वतीय परिसर में 2000 मी. की ऊंचाई पर प्रदर्शनों के माध्यम से पता चलता है कि ढाल के अनुरूप आलू की मेढ़ बनाकर खेती करने से ढाल के विपरीत खेती की अपेक्षा अधिक भूक्षरण तथा कम उत्पादन होता है ।

लगभग 20 प्रतिशत ढालू भूमि पर बसंत ऋतु (मार्च माह) में ढाल के अनुरूप व विपरीत दिशाओं में स्थानीय तोमड़ी आलू की बुआई की गयी । फसल पकने पर आलू के उत्पादन से पता चला कि जिस खेत में ढाल के विपरीत आलू की मेढ़ थी, वहां उपज अधिक मिली जबकि ढाल के अनुरूप मेढ़ बनाने से प्रारम्भ में नमी सम्पूर्ण खेत में एक समान नहीं थी तथा निचले भाग में अपेक्षाकृत अधिक नमी थी । साथ ही वर्षा के कारण उपजाऊ भूमि का अधिकतर भाग भूक्षरण के कारण निचले भाग में जमा हो गया तथा शेष भाग पानी के साथ बह गया । प्रारम्भ में ही नमी के कारण खेत के निचले भाग में अपेक्षाकृत स्वस्थ व घने पौधे थे । ढाल के विपरीत मेढ़ बनाकर आलू की खेती से अधिक उपज का कारण नमी की समान रूप से पर्याप्त उपलब्धता तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति का पूरा योगदान है । ऐसा करने से खेत की नमी ठीक बनी रहती है तथा उपजाऊ शक्ति भी स्थिर रहती है जो आलू के अंकुरण व बढ़वार के लिये अति आवश्यक है । ऐसी दशा में खेत से भूक्षरण भी अत्यन्त कम होता है ।

अतः पहाड़ी क्षेत्रों में जहां आलू की खेती एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, ऊंचे ढालू (असिंचित) क्षेत्रों में ढाल के विपरीत दिशा में मेढ़ बनाकर खेती करने पर अधिक उपज मिलती है तथा खेत की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है । यहां प्रदर्शित परिणाम 20 प्रतिशत ढालू भूमि पर आलू की उपज से सम्बन्धित हैं तथा भूमि का ढाल अधिक होने पर ढाल की दिशा में आलू बोने से भूक्षरण और अधिक होता है तथा उपज में बड़ी गिरावट आती है । ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों में तो कृषि योग्य भूमि का ढाल बहुत अधिक होता है तथा आलू की फसल भी बड़े पैमाने पर की जाती है । अतः यहां आलू की उत्पादकता बढ़ाने व किसानों को पूरा लाभ देने के लिए उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखना आवश्यक है । यदि आलू की उन्नत किस्मों को प्रयोग किया जाता है तब भरपूर उपज लेने के लिये नमी संरक्षण तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाये रखने की दृष्टि से इन सुझावों का विशेष महत्व है, क्योंकि उन्नत किस्मों के प्रयोग से खेत में नमी, खाद व उपजाऊ शक्ति की कमी का उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । नमी तथा भूमि संरक्षण के लिये ढाल के विपरीत नाली मेढ़ बनाकर खेती करने से कई फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है ।

सह प्रशिक्षक, कृषि विज्ञान केन्द्र
पर्वतीय परिसर, रानीचौरी (टि.ग.)

(पृष्ठ 17 का शेष)

एवं मेहनत का धनी रहा है । खासकर उसे प्रारम्भिक चरण में सही मार्गदर्शन, संरक्षण एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ती है । इस सुप्तावस्था में पड़े इस विशाल शक्ति का सदुपयोग करने के लिए सरकार को पहल करनी होगी । यह कार्य सरकार अपने नाना प्रकार के प्रचार एवं प्रसार माध्यमों यथा रेडियो, टी.वी., पत्र-पत्रिकाओं, प्रदर्शनियों, मेलें आदि द्वारा सुगमता से कर सकती हैं अनेक बार ऐसा भी होता है कि आम आदमी अपने ही आस-पास की गतिविधियों से अनभिज्ञ पड़ा रहता है । प्रचार एवम् प्रसार माध्यम इसकी पूर्ति करते हैं । विकास कार्यक्रमों में धन खर्च होता है और गांववासियों के पास धन का प्रायः अभाव रहता है । अतः सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण विकास निधि जैसी संस्थाओं से ग्रामीण स्वैच्छिक संगठनों को धन उपलब्ध कराकर उनके वित्तीय आधार को सुदृढ़ करना चाहिए तभी ये स्वैच्छिक संगठन सूचारू रुप से कार्य कर सकेंगे ।

देश की आठवीं योजना में भी आम लोगों को विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाने की अनिवार्य आवश्यकता को महसूस किया गया है । सरकार ने दृढ़ता से स्वीकारा है कि विकास की प्रक्रिया में लोगों को सक्रिय होकर काम करना होगा और सरकार को उनका सौहार्दपूर्ण ढंग से सहयोग करना होगा तभी देश का ग्रामीण एवं सर्वांगीण विकास सम्भव होगा ।

फ्लैट न. 56/8,
हिम विहार अपार्टमेन्टस,
पटपड़ गंज, दिल्ली-110092

स्वैच्छिक संस्थाएं : एक सिंहावलोकन

□ डॉ० नरेश चन्द्र त्रिपाठी □

भारत में ग्रामीण विकास के लिए समेकित प्रयास 1978 के बाद प्रारम्भ हुए, किन्तु 14 वर्षों के पश्चात् आज भी ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है । ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, बेरोजगारी एवं अल्परोजगारी, अशिक्षा, पेयजल की समस्याएं, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव व्यापक स्तर पर मौजूद है । स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि ग्रामीण विकास पर व्यय किये जाने वाले धन का 15 से 20 प्रतिशत तक ही लक्षित वर्ग तक पहुंचता है । ग्रामीण विकास के गम्भीर अध्येताओं, शोध एवं मूल्यांकन समितियों ने भी इसी धारणा की पुष्टि की है । 9 एवं 10 अक्टूबर 1992 को ग्रामीण विकास पर आयोजित मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में भी यह स्वीकार किया गया है कि इस मद पर व्यय हुए धन का अपव्यय अधिक हुआ है और भ्रष्टाचार बढ़ा है । इन समस्याओं के निदान एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को अधिक उपयोगी एवं प्रभावी बनाने के लिए जनता की अधिक सहभागिता एवं भागीदारी सुनिश्चित करने का सुझाव इस क्षेत्र के अध्येयताओं एवं विचारकों द्वारा दिया जाता रहा है । इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि जनता की सीधी भागीदारी से सरकारी अधिकारी एवं समाज के मध्यस्थ व दलाल धन को बीच में नहीं हड़प सकेंगे । यह भागीदारी स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं जैसे ग्राम पंचायत, विकास खण्ड समिति जिला परिषद्, सहकारी समितियों एवं स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। ये संगठन एवं संस्थाएं स्थानीय जनता से सीधी जुड़ी होती हैं और स्थानीय हित एवं आकांक्षाओं से परिचित होती हैं । इसलिए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं उनको सफल बनाने में इनका अपना महत्व होता है । ग्रामीण विकास में स्थानीय संगठनों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका हेतु कार्नेल विश्वविद्यालय (अमेरिका) की ग्रामीण विकास समिति ने 1974 में 16 विकासशील देशों का अध्ययन किया था । इस अध्ययन में इन संगठनों की प्रभविष्णुता, शासन तथा इस प्रक्रिया में इनके सापेक्षिक महत्व का विश्लेषण किया गया था। अध्ययन के अनुसार इस्राइल, चीन, ताइवान, मिस्र, दक्षिण कोरिया तथा भारत के पंजाब राज्य में ऐसे संगठन प्रभावी पाये गये जब कि शेष भारत, फिलीपीन्स, बांग्लादेश, पाकिस्तान, मलेशिया आदि देशों में इस प्रकार के संगठन कम थे । इस अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि जिन देशों में स्थानीय एवं स्वैच्छिक संगठन अधिक श्रेष्ठता से काम करते हैं वहां ग्रामीण विकास तथा कृषि की उन्नति अधिक हुई है । इन देशों में प्रति व्यक्ति कृषि आय एवं अनाज उत्पादन अधिक तेजी से बढ़ा है, कृषि का आधुनिकीकरण हुआ है, उर्वरकों का उपभोग तेजी से बढ़ा है और सिंचित क्षेत्रफल में तेजी से वृद्धि हुई है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्थानीय स्वैच्छिक संगठन ग्रामीण विकास को सफल बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं ।

ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग का क्षेत्र

ग्रामीण विकास और उससे सम्बन्धित कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संस्थाएं बहुविध सहयोग कर सकती हैं । स्वैच्छिक संस्थाएं निरक्षरता दूर करने और अन्धविश्वासों को तोड़ने के लिए अपने स्वयंसेवकों का उपयोग कर सकती हैं । इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या नियंत्रण, टीकाकरण, महिलाओं की स्थिति में सुधार का प्रयास भी ये संस्थाएं कर सकती हैं । भूमिहीनों को भूमि आवंटन, उनके लिए साधन जुटाने का कार्य भी स्वैच्छिक संस्थाएं कर सकती हैं । समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत लाभार्थियों के उचित चयन, उन्हें ऋण संस्थाओं से बिना शोषण के लाभ दिलाने में इन संस्थाओं का योगदान हो सकता है । न्यूनतम मजदूरी का ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वयन, बन्धुआ मजदूरी के समापन एवं मजदूरों के शोषण को रोकने में भी स्वैच्छिक संस्थाओं की प्रभावी भूमिका हो सकती है । विभिन्न रोजगार योजनाओं के क्रियान्वयन में ठेकेदारी प्रथा पर रोक, समय पर एवं उचित मजदूरी का भुगतान करने में सहायता कर सकती हैं । ग्रामीण क्षेत्रों में जनता को राजनीतिक नेतृत्व के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को चुनने, प्रजातांत्रिक संस्थाओं में अधिक रुचि लेने, अधिकारों के प्रति सजगता उत्पन्न करने का कार्य भी विकास प्रक्रिया का अंग है, और यह कार्य भी इन संस्थाओं द्वारा किया जा सकता है । राष्ट्रीय बचत

योजनाओं की जानकारी और मितव्ययिता का प्रशिक्षण ग्रामीण जनता को स्वैच्छिक संस्था दे सकती है ।

स्वैच्छिक संगठनों से सहयोग की अपेक्षा एवं प्रोत्साहन के प्रयास

भारत में ग्रामीण विकास तथा तत्सम्बंधी कार्यक्रमों के सम्बन्ध में सरकार ने अपनी नीतियों में सहयोग की अपेक्षा की है । केन्द्र सरकार ने इन संगठनों का अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए कुछ प्रेरक एवं प्रोत्साहन मूलक कार्य भी किये हैं ।

भारत की जनसंख्या नीति 1976 में यह स्पष्टता से उल्लेख किया गया कि जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम को अधिक सघनता से क्रियान्वित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों का सहयोग लिया जाएगा । इसके पीछे उद्देश्य यह है कि जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम को सरकारी कार्यक्रम की धारणा से मुक्ति मिल सके और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से इसे जन कार्यक्रम बनाया जा सके । स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा ऐसे संगठनों को वित्तीय सहायता दी जाती है ।

साक्षरता एवं विकास में सकारात्मक सम्बन्ध है । अतएव ग्रामीण साक्षरता भी विकास से जुड़ा प्रश्न है । राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने स्वैच्छिक संगठनों का सहयोग लेने के लिए बड़ी संख्या में ऐसे संगठनों का नियोजन किया है । वर्ष 1987-88 में 300, 1988-89 में 400 और 1989-90 में 300 स्वैच्छिक संगठनों को इस कार्यक्रम में लगाया गया और वित्तीय सहायता प्रदान की गयी । मिशन की धारणा है कि स्वैच्छिक संगठन आम लोगों के साथ अपने घनिष्ठ सम्पर्क और समर्पित स्वयंसेवकों के उपयोग से साक्षरता को जन कार्यक्रम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । केरल में सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त करने में इन संगठनों ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के प्रचार प्रसार हेतु स्वैच्छिक संगठन अच्छा कार्य कर सकते हैं । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जन कार्य और ग्रामीण प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने वाली परिषद् ''कापार्ट'' स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करने हेतु कार्य करती है । यह परिषद् ग्रामीण विकास और आधारभूत ढांचा विकसित करने के कार्यक्रम को हाथ में लेती है । 'कापार्ट' ने 1991-92 में स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा क्रियान्वित की जाने वाली 2500 परियोजनाओं को स्वीकृति दी । परियोजनाओं की लागत 47.5 करोड़ रुपये है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वैच्छिक संगठनों को विकसित करने, इन्हें सक्रिय करने और इनसे सहयोग प्राप्त करने के लिए पांचवीं पंचवर्षीय योजना से एक विशेष योजना चलायी जा रही है । योजनान्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में आदर्श एवं शक्तिशाली संगठन के विकास के लिए महिला मंडलों एवं युवक मंडलों को प्रोत्साहन देना और उन्हें सुदृढ़ करना, इन संगठनों के पंजीकरण की विधि को सरल बनाना, उनके अधिकारियों को प्रशिक्षित करना, उनकी कार्यविधि के बारे में अनुसंधान करना, रखरखाव के लिए अनुदान देना, महिला मण्डलों को पुरस्कार देना तथा चुनी हुई ग्रामीण महिलाओं को नेतृत्व प्रशिक्षण देना इस योजना के मुख्य अंग हैं । 1976-77 में 25 लाख रुपये इस कार्य हेतु व्यय किये गये थे । पूरी पांचवीं योजना में 3.78 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान इस उद्देश्य के लिए किया गया था ।

सातवीं योजना में गरीब ग्रामीणों के संगठन तथा शिक्षा हेतु एक नई योजना बनायी गयी थी ताकि चयनित परिवार को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत मिलने वाले लाभों की जानकारी हो सके । इसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाने हेतु ग्रामीण विकास विभाग ने राज्यों से नवम्बर 1985 में राज्य सरकारों को परिपत्र भेजकर निवेदन किया था कि वे विकास खण्ड स्तर पर एक सलाहकार समिति का गठन करें । इसके लिए स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान भी प्राप्त किया जाए । इस हेतु ग्रामीण विकास विभाग ने सातवीं पंचवर्षीय योजना में ''भारतीय लोक विकास कार्यक्रम'' (पाटी), नई दिल्ली को संसाधन उपलब्ध कराये थे ताकि वह गैर सरकारी स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग इन कार्यक्रमों हेतु प्राप्त कर सकें ।

आठवीं योजना में स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी एवं सहयोग और अधिक प्राप्त करने की योजना बनायी गयी है । अभी हाल में 9 एवं 10 अक्तूबर को ग्रामीण विकास पर मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री तथा ग्रामीण विकास मंत्री ने स्वैच्छिक संस्थाओं से ग्रामीण विकास में अधिक सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया । भूमिहीनों को वितरित करने योग्य 7 लाख हेक्टेयर भूमि के आवंटन, उस पर भूमिहीनों को कब्जा दिलाने और खेती करने में सहायता देने का कार्य स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से किया जाएगा ।

स्वैच्छिक संगठनों की समस्याएं

भारत में स्वैच्छिक संस्थाएं एवं संगठन अभी अपेक्षित मात्रा में ग्रामीण विकास में अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं कर पा

रहे हैं । इसका कारण उन संगठनों से जुड़ी कुछ समस्याएं हैं :

1. भारत में अधिकांश स्वैच्छिक संगठन सेवा कार्य, समाज सुधार या सांस्कृतिक कार्यक्रम के उद्देश्य से गठित किये गये हैं, फलतः विकास प्रक्रिया में उनकी रुचि कम रहती है ।
2. कुछ संगठन सरकारी अनुदान एवं सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए छद्म एवं कपटपूर्ण उद्देश्यों से गठित किये गये हैं । ऐसे संगठनों के कारण इनकी छवि लूटने खाने वाले संगठनों की भांति हो गयी है । फलतः जनता इन पर भरोसा नहीं करती ।
3. यदि कुछ संगठन वास्तव में विकास कार्य करना चाहते हैं तो वित्तीय कठिनाइयां बाधक बनती हैं । सरकार द्वारा प्रदत्त वित्तीय सुविधाएं एक तो अपर्याप्त हैं और दूसरी ओर प्राप्त करना कठिन होता है । इन्हें वित्तीय सुविधाएं देने में भी भ्रष्टाचार की शिकायतें सुनने को मिलती हैं ।
4. प्रायः स्वैच्छिक संगठनों का नेतृत्व कुशल, ईमानदार एवं जागरूक नहीं होता है, जिसके कारण संगठनों का विकास बाधित होता है । ऐसे संगठन में कुशल एवं समर्पित स्वयंसेवकों की भी कमी रहती है क्योंकि नेतृत्व में आकर्षण नहीं होता ।
5. युवक मंगल दल या महिला मण्डल कभी लक्ष्यपूर्ति के उद्देश्य से बलात् गठित कर दिये जाते हैं । ऐसी स्थितियों में उनका कार्य केवल औपचारिक रह जाता है ।

उपर्युक्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए अब आवश्यकता इस बात की है कि स्वैच्छिक संस्थाओं की समस्याओं को हल करके उन्हें स्वस्थ रूप से विकसित करने का अवसर प्राप्त हो । भ्रष्ट आचरण एवं कपटपूर्ण व्यवहार करने वाली संस्थाओं के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जाए तथा अच्छा कार्य करने वाली संस्थाओं को पुरस्कृत किया जाए । स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रति एक स्वस्थ एवं स्पष्ट नीति का निर्माण किया जाना चाहिए ताकि ये संस्थाएं विकास में अपनी अपेक्षित भूमिका का निर्वाह कर सकें ।

प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग
रामनगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर
बाराबंकी (उ०प्र०)

(पृष्ठ 11 का शेष)

कठपुतली के विकास की दिशा में भारतीय जन संचार संस्थान के अलावा एन०सी०ई०आर०टी० (राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद्) आदि ने बहुत कुछ किया है। किन्तु ग्राम स्तरीय विकास कार्यकर्ताओं एवं संचारकों को इस तकनीक का लाभ नहीं मिल सका है ।

आवश्यक नहीं है कि किसी भी विभाग या संस्थान में परम्परागत माध्यमों को प्रयोग में लाने के लिए स्टाफ ही रखा जाए या सांस्कृतिक दल ही नियुक्त हो, स्थानीय कलाकारों को अनुबंधित करके इस प्रकार के बेहतर और कम खर्च के कार्यक्रम कराये जा सकते हैं । उसी प्रकार कठपुतली आदि के खेल दिखाने वाले दलों को भुगतान करके भी चुने गये क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों के प्रति जनता की सही समझ और सोच को जागृत किया जा सकता है किन्तु इसके लिए उपयुक्त संचार माध्ययों का बेहतर उपयोग करना जरूरी है ।

23-ए, बेली रोड, नया कटरा,
इलाहाबाद-210002
उ०प्र०

सुधारात्मक परिवर्तन के कारक : स्वयंसेवी संगठन

□ अरविन्द कुमार सिंह □

आज भी भारत की 70 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। अतः गांवों के विकास पर ही देश के विकास की गति निर्भर करती है। ग्रामीण विकास का अर्थ गांवों में रहने वाले निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने से है। 1970 के दशक के पूर्व ग्रामीण विकास का अर्थ कृषि विकास से लगाया जाता था। लेकिन असल में ग्रामीण विकास अनेक कार्यों का मिश्रण है जिसमें कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ नयी रोजगार योजनाएं उत्पन्न करना, स्वास्थ्य एवं शिक्षा में सुधार, संचार का विस्तार तथा आवासीय स्थिति में सुधार लाने की प्रक्रियाएं आदि भी सम्मिलित हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को ऐसे परिभाषित किया है : "एक ऐसा प्रयास जो गांव की संस्कृति को बरकरार रखते हुए आधुनिक संसाधनों के उपयोग से ग्रामीणों के आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं नैतिक उत्थान में सहायक हो।" राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो भारतीय गांवों को जीवित गणतंत्र के रूप में देखने की कल्पना की थी जहां काम के अभाव में कोई भी व्यक्ति बेकार नहीं होगा, सबको संतुलित भोजन मिलेगा, सब के लिए आवास और खादी वस्त्र उपलब्ध होगा।

सामुदायिक विकास पर कैम्ब्रिज सम्मेलन में ग्रामीण विकास प्रक्रिया को इस तरह परिभाषित किया गया है– "एक आंदोलन समूचे समुदाय का जीवन स्तर ऊपर उठाने का प्रयास करता है और यह प्रयास उन्हीं लोगों द्वारा आरंभ किया जाता है जो खुद प्रभावित होते हैं।"

ऐसे तो भारत सरकार और अन्य राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण विकास के भिन्न भिन्न कार्यक्रम चलाये जाते रहे हैं, लेकिन ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संगठन भी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामाजिक विकास में स्वयंसेवी संगठनों का एक सुनहरा इतिहास रहा है। राजाराम मोहन राय का ब्रह्म समाज, दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन और ज्योतिबा फुले का सत्यशोधक समाज आंदोलन आदि स्वयंसेवी संगठनों का सामाजिक विकास में योगदान भुलाया नहीं जा सकता। 1920 के दशक में स्वयंसेवी संगठनों के विकास में स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्र नाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के विचारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अगर देखा जाये तो स्वतंत्रता आंदोलन भी एक वृहद् स्तर का स्वयंसेवी प्रयासों का ही फल था।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन द्वारा चलाये जा रहे ग्रामीण विकास की सफलता से प्रभावित होकर स्वतंत्रता के पूर्व ही पंडित नेहरु ने सम्पूर्ण पश्चिम बंगाल के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को ठाकुर के निर्देशन में चलाने का अनुरोध किया था। लेकिन ठाकुर ने अपनी असमर्थता जताते हुए अनुरोध स्वीकार नहीं किया था।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास के क्षेत्र में हजारों स्वयंसेवी संगठन प्रयत्नशील हैं। ग्रामीण विकास का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जिस पर स्वयंसेवी संगठन काम न कर रहा हो। आज स्वयंसेवी संस्थाओं की महत्ता इतनी बढ़ गयी है कि ये संस्कृति का एक अंग बन गयी है।

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवी संगठनों का मुख्य अर्थ है– ग्रामीण नेतृत्व को बढ़ावा देना, ऐसी ग्रामीण संस्थाओं का विकास जो क्षेत्रीय समस्याओं को सुलझाने में समर्थ हों तथा ग्रामीण संसाधनों को व्यवस्थित कर उनका ग्रामीणों में सही ढंग से बंटवारा कर सकें।

आज स्वयंसेवी संस्थाओं की उपस्थिति ग्रामीण विकास के हर क्षेत्र में देखी जा सकती है चाहे वो कृषि विकास का हो या वयस्क शिक्षा का, परिवार कल्याण का हो या कोई और। ये स्वयंसेवी संगठन विकास योजनाएं सफलता पूर्वक चला रही हैं। स्वयंसेवी संगठनों की प्रारम्भिक भूमिका एक वैज्ञानिक, दार्शनिक और एक सहयोगी की होती है। स्वयंसेवी संगठन सिर्फ एक माध्यम ही नहीं अपने आप में एक उद्देश्य होते हैं। समाजवादी समाजों में स्वयंसेवी संगठनों का एक निश्चित स्थान होता है और ये संगठन सामाजिक बदलाव के एक मुख्य कारक के रूप में कार्य करते हैं। स्वयंसेवी संगठन मुख्य रूप से सामुदायिक चेतना का विकास करने में सहायक होते हैं और सरकार और सामान्य नागरिकों के बीच एक पुल का कार्य करते हैं। ये संगठन सरकार की विभिन्न विकास परियोजनाओं की

जानकारी लोगों तक पहुंचाते हैं । सरकार और जनता के बीच के कम्युनिकेशन गैप को कम करते हैं । उपलब्ध तकनीकी विकास को गांवों तक पहुंचाने में भी स्वयंसेवी संगठन बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने के साथ-साथ इन योजनाओं को तैयार करने में भी मदद करते हैं । चूंकि इन संस्थाओं को गांवों की समस्याओं की पूर्ण जानकारी होती है । अतः ये सरकार को समय-समय पर इसकी जानकारी उपलब्ध करवाती हैं कि कौन-सा क्षेत्र पिछड़ा है और किस क्षेत्र को विशेष विकास की आवश्यकता है । इससे योजना बनाने वाले अधिकारियों को सुविधा होती है । स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण युवकों को रोजमर्रा के कामों में दक्ष बनाकर रोजगार दिलाने में मदद करते हैं । स्वयंसेवी संस्थाएं सामान्यत तीन तरह के कार्य करती हैं – (1) कुछ विशेष कार्यक्रम चलाकर रोजगार का सीधा अवसर बनाना, (2) इस तरह की योजना बनाना जिसे जानने के बाद ग्रामीण अपने आर्थिक और कल्याणकारी कार्यक्रम खुद ही तय कर सकें, (3) जन चेतना का विकास कर सामान्य नागरिकों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना । स्वयंसेवी संगठन जनता का हितैषी, सुधारक और बदलाव के कारक रूप में कार्य करते हैं । ये संगठन अपने विकास के सफल प्रयोगों से ऐसा माहौल बनाते हैं जिससे उन्हें बाहरी आर्थिक मदद मिल सके ।

स्वयंसेवी संस्थाएं प्रयोग के माध्यम से बदलाव लाने में विश्वास करती हैं । अतः सामान्यतया इन्हें सफलता मिलती है । स्वयंसेवी संगठनों का हस्तक्षेप सामान्य जनता को सरकारी संस्थाओं तक पहुंचने और लाभ उठाने में मदद करता है । संगठन के पेशेवर स्वयंसेवक ग्रामीण युवकों को उनके कैरियर के चुनाव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । स्वयंसेवी संगठन प्रशिक्षण, शोध और प्रलेख के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं चूंकि स्वयंसेवी संगठन ग्रामीणों के सीधे सम्पर्क में होते हैं और उनकी समस्याओं से अच्छी तरह परिचित होते हैं । अतः उनके समाधान में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । चूंकि इन संगठनों की योजना और क्रियान्वयन ग्राम स्तर पर ही होता है अतः इन्हें सफलता मिलती ही है ।

यदि हम कुछ बहुचर्चित स्वयंसेवी संगठनों पर नजर डालें तो साफ पता चलता है कि स्वयंसेवी संगठन किस तरह से ग्रामीण विकास में सफल भूमिका निभाते हैं । तिलोनिया (राजस्थान) का सामाजिक कार्य और शोध केन्द्र, कृषि विकास संबंधी सुविधाएं कम मूल्यों पर उपलब्ध करवाता है तथा हस्तकलाओं का विकास कर और प्रदर्शनी के माध्यम से ग्रामीणों के आय में वृद्धि करता है ।

उदयपुर की सेवा मन्दिर और विद्याभवन जैसी संस्थाएं गांवों के शिक्षा स्तर में सुधार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं । प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भी इन संगठनों का नाम अग्रणी है । एशियन इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलेपमेंट बंगलौर, मानव संसाधन के माध्यम से ग्रामीण विकास कर रही है । पद्मश्री कृष्णदेव दीवान के स्वयंसेवी प्रयास के कारण ही हरियाणा का नीलोखेड़ी गांव ग्रामीण विकास के संगठनों के लिए एक मिसाल बन गया है ।

पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका वांछनीय है । इस क्षेत्र में "चिपको आंदोलन" का नाम किसी से छुपा हुआ नहीं है ।

सामाजिक सुरक्षा और अपराध उन्मूलन के क्षेत्र में भी स्वयंसेवी संगठन बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । जिस गति से युवा वर्गों में अपराध की प्रवृत्ति बढ़ रही है हर व्यक्ति जानता है । चूंकि सामान्य जनता अपने जीवनयापन से अधिक सोच नहीं पाती ऐसी परिस्थिति में स्वयंसेवी संगठनों की जिम्मेवारी और बढ़ जाती है । किसी भी समाज से अपराध का उन्मूलन तब तक संभव नहीं जब तक वह जनता, पुलिस और प्रशासन को सहयोग नहीं देगी ।

सुलभ शौचालय इंटरनेशनल संस्था को ग्रामीणों के लिए स्वच्छ और स्वास्थ्योपयोगी वातावरण बनाने में मदद करनी चाहिए । गांवों में भी सामुदायिक शौचालयों का निर्माण होना चाहिए ।

सरकार द्वारा कार्यान्वित कुछ योजनाएं हैं जहां स्वयंसेवी संगठनों की उपस्थिति अनिवार्य है । सरकार द्वारा समन्वित ग्रामीण विकास योजना के तहत गरीबों और भूमिहीनों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है । लेकिन दुर्भाग्यवश अधिकांश लोगों को इसका लाभ नहीं मिल पाता । गरीबों के नाम से पैसे तो आवंटित कर दिये जाते हैं लेकिन ये पैसे उन तक पहुंच नहीं पाते क्योंकि आवंटन बिचौलियों के माध्यम से किया जाता है और ये बिचौलिये गरीब जनता के अशिक्षित होने का नाजायज लाभ उठाते हैं । यदि इस तरह के आवंटन स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से किये जाएं तभी गरीब ग्रामीणों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है ।

स्वयंसेवी संगठनों की कार्यप्रणाली क्या हो ?

1. स्वयंसेवी संगठनों को एक उत्प्रेरक बल के रूप में कार्य करना चाहिए ।
2. ग्रामीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि ये संगठन गांवों में ही स्थित हों ।
3. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के नाम पर फिजूलखर्ची से इन संगठनों को बचना चाहिए ।
4. इन संगठनों को अपना ध्यान कमजोर वर्ग के बच्चों, महिलाओं और असहायों पर केन्द्रित करना चाहिए ।
5. यदि गरीबों के उत्थान के लिए इन संगठनों को विकसित वर्ग का कोपभाजन भी बनना पड़े तो उन्हें इसके लिए तैयार रहना चाहिए ।
6. संगठनों को ऐसे भी कार्यक्रम चलाने चाहिए जिससे आय में तत्काल वृद्धि हो ।
7. इन संगठनों को सफलतापूर्वक काम करने के लिए ग्रामीणों का विश्वास प्राप्त करना चाहिए ।
8. उनकी योजनाएं व्यस्क शिक्षा रोजगार से सम्बंधित हों ।
9. सरकार द्वारा कार्यान्वित कार्यक्रमों को संगठनों द्वारा अपने हाथों में लेना चाहिए ।
10. ग्रामीण प्रतिभाओं को स्वयंसेवी संगठनों में आकर्षित करना चाहिए ताकि उनका पलायन न हो ।
11. स्वयंसेवी संगठनों को ग्रामीण विकास के लिए इस पद्धति को अपनाना चाहिए । इस पद्धति की विशेषता यह है कि बदलाव नीचे के स्तर से आता है । इस पद्धति को गांधी जी ने अंत्योदय का नाम दिया था ।
12. स्वयंसेवी संगठनों को सरकार से प्रतियोगिता नहीं करनी चाहिए ।

स्वयंसेवी संगठनों को ग्रामीण विकास योजना संचालन में कई बाधाओं का भी सामना करना पड़ता है । सबसे मुख्य बाधा आर्थिक कमी है दूसरा सरकारी अधिकारियों का सौतेला व्यवहार भी इन संगठनों के सफल संचालन में बाधा डालती है । बाहरी देशों से मिलने वाले अनुदानों के लिए स्वयंसेवी संगठनों को सरकार से पूर्व आदेश लेना पड़ता है । सातवीं पंचवर्षीय योजना में सरकार ने स्वयंसेवी संस्थाओं की एक सूची तैयार की है जो स्वयंसेवी संगठन इस सूची के अंतर्गत नहीं हैं उन्हें ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाने के लिए सरकार से पूर्व आदेश लेना पड़ता है । सातवीं पंचवर्षीय योजना में संगठन जो इस सूची के अंतर्गत नहीं हैं उन्हें ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाने के लिए सरकार से पूर्व आदेश लेने पड़ते हैं जिससे कुछ तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । स्वयंसेवी संगठनों में आंतरिक समन्वय की भी कमी होती है । स्वयंसेवकों में आत्मसम्मान की कमी भी एक बाधक का काम करती है ।

इन सारी खामियों के बावजूद भी स्वयंसेवी संगठनों के महत्व को सरकार स्वीकार करती है और इन संगठनों की सहायता से विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रम करवा रही हैं । कुछ केन्द्रीय मंत्रालय जैसे केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, स्वास्थ्य मंत्रालय, शिक्षा मंत्रालय, कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय विज्ञान एवं तकनीक मंत्रालय आदि अपने ग्रामीण विकास कार्यों के कार्यान्वयन में क्षेत्रीय स्वयंसेवी संगठनों से सीधे सम्पर्क रखते हैं । महिला समिति, युवा बल और बाल मंडल जैसी संस्थाएं पहले से ही सरकार के सहयोगी संगठन के रूप में कार्य कर रही हैं । सरकार ने स्वयंसेवी संगठनों की सफल भूमिका और कार्य प्रणाली को देखते हुए इन संस्थाओं को बढ़ावा देने के लिए एक केन्द्रीय संस्था की शुरुआत 1986 में की थी । यह संगठन लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कापार्ट) नाम से जाना जाता है । यह संगठनों को आर्थिक मदद के साथ-साथ व्यवस्थापकीय कार्यों में भी सहयोग देती है ।

आज हमारे विकासशील समाज को नये विचारों और विकल्पों की आवश्यकता है जिसे स्वयंसेवी संगठन बखूबी पूरा कर सकते हैं ।

शोध छात्र
ग्राम-पोस्ट आमस
जिला गया (बिहार)

* * *

प्रगति में सहायक : स्वैच्छिक संगठन

☐ म. वि. कुबडे ☐

आर्थिक विकास के विशेषज्ञों ने "ग्रामीण विकास" को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है, परन्तु अब "ग्रामीण विकास" का अर्थ है आर्थिक समानता एवं सामाजिक न्याय की दृष्टि से ग्रामीण गरीबों एवम् समृद्धों के बीच की खाई को पहचानना तथा उसे दूर करना। विश्व बैंक ने भी विकास के फायदों को ग्रामीण क्षेत्र के सबसे गरीब तबकों तक पहुँचाने का सुझाव दिया है। इस तरह इसका सम्बन्ध मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों को अपना जीवन-स्तर सुधारने का अवसर प्रदान करने से है।

गांवों के विकास में नीति

भारत का वास्तविक विकास गांवों के विकास में निहित है, इसे स्पष्ट करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत चन्द शहरों में नहीं बल्कि सात लाख गांवों में बसा है, यदि गांव बर्बाद होंगे तो भारत का भी अहित हो जायेगा। वास्तव में ग्रामीण विकास भारत जैसे विकासशील देश के लिए आर्थिक विकास का आधार स्तम्भ है।

आजादी के बाद राष्ट्रीय सरकार ने भी जमींदारी प्रथा उन्मूलन एवं अन्य भूमि सुधार उपायों को इसी उद्देश्य से लागू किया था। उक्त सामान्य उपायों के अतिरिक्त विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इसके लिए विशिष्ट परियोजनाएँ लागू की गयी थी, जैसे सामुदायिक विकास योजना, गहन कृषि योजना, पैकेज प्रोग्राम, एस.एफ.डी.ए. एवं एम.एफ.ए.एल. परियोजना, क्रैश प्रोग्राम,सम्मिलित ग्रामीण विकास योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन परियोजना, इंदिरा आवास योजना इत्यादि।

ये योजनाएं, जो 1972 तक लागू की गयी थीं, उससे बड़े ग्रामीण किसान ही लाभान्वित हुए और ग्रामीण समाज का कमजोर वर्ग उसके लाभों से अछूता ही रह गया। बाद की योजनाएं जो विशेषकर गरीबी दूर करने के लिए बनायी गयी वे भी ग्रामीण गरीबों का भाग्योदय नहीं कर सकी। अप्रैल 1989 में सरकार ने जवाहर रोजगार योजना लागू की जो उतनी प्रभावकारी सिद्ध न हो सकी। ये योजनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, अशिक्षा, क्षेत्रीय असमानता, अपर्याप्त साधनों की आपूर्ति, आधारभूत सुविधाओं का अभाव एवं गलत नीतियों के चलते प्रभावहीन रही हैं।

भारत में ग्रामीण लोगों की हालत आज बहुत ही खस्ता है। इसकी शुरूआत पानी से ही करें तो ऐसा मालूम होता है कि अधिकतर ग्रामीणों को आज शुद्ध पानी मिलना मुश्किल है।

सरकार, सहकारी संस्थाओं या अर्धशासकीय संस्थाओं ने इसमें हस्तक्षेप करने की कोई जरूरत महसूस नहीं की है अतः स्वैच्छिक संगठन इसमें आगे आ सकते हैं। पांच दस व्यक्तियों का समूह आसानी से यह काम कर सकता है। अगर समूह या ग्रुप से यह काम नहीं बनता तो स्वयं अकेले व्यक्ति भी यह काम आसानी से कर सकता है।

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। भारतीय ग्रामीण महिलाओं को गर्भावस्था में पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता, परिणामतः उनके नवजात शिशु को जवानी तो नहीं सीधे बुढ़ापा आ धमकता है। प्रायः ग्रामीण मजदूर अस्वस्थ रहता है, इसलिए वे सही ढंग से शारीरिक एवं मानसिक रूप से काम नहीं कर पाते हैं तथा उनके अधिकांश दिन बेकार ही बैठे गुजर जाते हैं। फलस्वरूप उनकी आय निम्न होती जाती है। बचत का सवाल ही नहीं पैदा होता अपने बच्चों के लिए दोनों वक्त भर पेट भोजन नहीं जुटा पाते। सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी कार्यक्रम महज एक मजाक बन कर रह गया है। ग्रामीणों की हालत को देखकर "दिनकर" की वह पंक्ति याद कर हृदय द्रवित हो जाता है- "ऊपर-ऊपर पी जाते हैं जो पीने वाले।" इसके लिए सरकार को कितना दोषी ठहराया जाय। हमारी सरकार ने तो हर ग्राम पंचायत में स्वास्थ्य उपकेन्द्र खोल रखा है परन्तु गांवों का दौरा कर कोई देखे कि क्या ये उपकेन्द्र खुलते भी हैं या नहीं। हां जहां लोग कुछ जागरूक है वहां खुलते भी हैं तो वहां उचित दवा उपलब्ध नहीं। स्वास्थ्य क्षेत्र में स्वयंसेवी डॉक्टरों का संगठन काम कर सकता है। इससे मरीजों की जान से खिलवाड़ बन्द होगा। स्वतः स्वास्थ्य सेवा मिलेगी। बेकार डॉक्टरों को काम मिलेगा।

ग्रामीण विकास में आस्था रखने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं को ग्रामीण विकास का ऐसा ढाँचा बनाना चाहिए जिससे ग्रामीण आदमी और उस पर आश्रित उसका कुटुंब अपनी जीवन की आवश्यकताएं पूरी कर सके। उसके लिए खेती विकास और संलग्न व्यवसाय और पूरी औद्योगिक नीति का ढाँचा बदलकर विकेंद्रीकरण की नीति कामयाब करनी होगी। इसके लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को आवश्यक

योजनाओं का निर्माण करना पड़ेगा । उस पर अमल करते समय सरकारी नियंत्रण न्यूनतम हो और लोगों का सहभाग महत्वपूर्ण रहेगा। यह देखना होगा इससे भ्रष्टाचार और फिजूल खर्च पर पाबंदी लगे और ग्रामीण और कृषि जीवन में चेतना होगी।

परिवहन सुविधा

भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों का ग्रामीण विकास तभी सम्भव है जब वहां परिवहन सुविधा दूर-दराज के गांवों तक उपलब्ध हो । अपने देश में परिवहन परिदृश्य बड़ा ही विविधतापूर्ण है । एक तरफ हवाई जहाज, रेल तथा मोटर वाहन तो दूसरी तरफ चर-मर, चर-मर करती बैलगाड़ी । यदि कहा जाय कि 21 वीं शताब्दी के प्रवेश द्वार पर भी बैलगाड़ी भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारशिला है इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । इनका उपयोग सिर्फ खेत खलिहानों में ही नहीं, बल्कि अन्य कार्यों तथा निकटवर्ती स्थानों के यात्रियों और माल को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में किया जाता है । गावों में परिवहन साधन भारतीय अर्थव्यवस्था की शिरायें एवं धमनियां हैं । इनके अभाव में ये अर्थव्यवस्था मरणासन्न हो जायेगी । गांवों में परिवहन साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करा दिये जायें तो ग्रामीण गरीब अपना विकास अपने आप कर लेगा । बढ़ती हुई आबादी के कारण हमारी सरकारी परिवहन सुविधा कम पड़ रही है । इसलिए स्वैच्छिक संस्थाओं को परिवहन व्यवस्था में अपनी रुचि| दिखानी चाहिए ।

कुछ अच्छे काम

रोजगार वृद्धि को गति देने के लिए ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग निर्माण के लिए विपणन, मार्गदर्शन तथा प्रबंध बहुत ही कम मात्रा में हुआ ।

ऐसी दशा में भी हमारे समक्ष कुछ आदर्श गांव हैं जिन में से इन समस्याओं पर या कमी को मात करके उनको दूर करने पर सफलता पायी गयी है । राळेगण शिंदी नामक गांव में कर्ममहर्षि श्री अण्णसाहेब हजारे (महाराष्ट्र) ने लोक सहभागिता से "ग्राम विभाग" का तेजस्वी आदर्श स्तभ खड़ा किया है । आडगाव और पिंपळगांव गांव में श्री विजय अण्णा बोराडे, श्री जवाहर गांधी और उनके साथियों ने पानी नियोजन से ग्रामीण विकास का अच्छा काम किया है । महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध कवि श्री महानोर ने स्वयं श्रम से खेती विकास और पानी नियोजन में से फलखेती कर अपने गांव को प्रेरणा दी है । श्री विजय साळुंछे का पाणी पंचायत का कार्य इसी प्रकार से प्रशंसनीय है । श्री देवल का आदिवासी विकास के लिए किया हुआ कार्य भी प्रशंसायोग्य है । ऐसे ही कुछ गांव और लोग ग्रामीण विकास का ऐतिहासिक काम कर रहे हैं । उनके कार्य पर महाराष्ट्र को गर्व है।

चित्र बदल सकता है

आज ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा कृषि उद्योग नहीं हैं लेकिन पहले की व्यवस्था आधुनिक विज्ञान के तेज विकास से टूट गयी है । खेती व्यवसाय दिन ब दिन शहर पर आश्रित रहने लगा है । नतीजा यह हुआ कि खेती उद्योग में बड़े पैमाने पर अस्थिरता हो गयी है । ग्रामीण योजनाओं में थोड़ा सा औद्योगीकरण किया गया तो आज भी ग्रामीण क्षेत्र आत्मनिर्भर बन सकते हैं । स्वैच्छिक संस्था इस कार्य को कर सकती हैं ।

महाराष्ट्र में ग्रामीण औद्योगीकरण का एकमेव आशा स्थान है उद्योग । महाराष्ट्र इस में बहुत ही पीछे है। जहाँ महाराष्ट्र के श्री गोंदे चीनी कारखाने के परिसर में गन्ने के लिए पानी नहीं है वहां काश्तकार नींबू की पैदावार करता है । बहुत ही अच्छे दाम में उसके नींबू बेचे जाते हैं । बरसात के दिनों में उसके नींबू तोड़ने का खर्च भी नहीं पड़ता । अगर स्वैच्छिक संस्थाओं ने उनके बुरे दिन में उनको संरक्षण दे तो मेरी राय में 30 महीने के भीतर ही उसी पैसे से कोई उद्योग खड़ा हो सकता है।

हालैंड जैसा ग्रामीण विकास हो

डॉ. जयंतराव पाटिल ने हालैंड स्थित खार जमीन का विकास कैसे किया यह बताते हुए अपने यहां के प्रश्न को उठाया । खार जमीन का उपजाऊ बनाने के लिए यहां के लोगों ने बहुत बड़ा काम किया है। 32 कि.मी. का लम्बा बाँध, जर्मनी और बेल्जियम से पत्थर लाकर बाँधा और 2 लाख हेक्टेयर जमीन मानवी प्रयत्न से तैयार की । इस बांध से करीबन सवा हेक्टेयर भूमि में पीने के पानी का तालाब तैयार हुआ और मछलियों का उत्पादन भी बढ़ गया।

करीबन पाउड से ढेड़ लाख एकड़ का एक भाग बनाकर, रेत दबा डाली । उससे पानी झिरपता नहीं । नमक और पानी बह जाता । समुंदर का लेवल जमीन के उपर होने से हमेशा पंप चालू रहता है। मिट्टी की ओल कम करने के लिए रिड नामक घास लगायी । नतीजन जमीन सूख गई । चार-पांच साल के अंदर जमीन खेती लायक बन गयी । मक्का,लहसन,आदि खार जमीन में पैदा होने लगी । दूध देने वाले जानवरों की तादाद में बढ़ोतरी हुई । बदक, फुलझाड़, आदि के लिये हालैंड प्रसिद्ध है । फूल का कंद बनाने का बड़ा उद्योग लगा। यहां से फूल दूसरे जगह के लिए लाये गये । उसके लिए छिद्रयुक्त प्लास्टिक की नली उपयोग में लायी गयी । फूल, पाईन वृक्ष की खेती करके समस्त राष्ट्रों को बड़ा अनुकरणीय उदाहरण करके दिखाया।

भारत में भी मिट्टी का संतुलन बिगड़ रहा है । इस संदर्भ में यहां के स्वैच्छिक संस्थाओं को हालैंड जैसा काम करना चाहिए ।

आधुनिक युग में स्वैच्छिक संस्थाएं प्रजातांत्रिक मूल्यों को बनाये रखने तथा उनके उन्नयन का महत्वपूर्ण साधन बन सकती है। किसी भी देश में चाहे वह विकसित हो या नव विकसित, ये संस्थाएं गरीबतम व्यक्ति को सहायता प्रदान करके, देश के भौतिक साधनों को गतिशील करके, निजी क्षेत्र की संस्थाओं को स्फूर्ति प्रदान करके, स्व-स्फूर्ति विकास की प्रकिया में लोगों को सहायता प्रदान कर, विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

स्वैच्छिक एजेन्सियां क्या हैं

एक एजेन्सी चाहे वह संगठित हो या असंगठित समाज के कल्याण के लिए कार्य करती है। यह केवल एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह हो सकती है। इसे प्रायः गैर सरकारी संगठन के नाम से जानते हैं।

एक स्वैच्छिक एजेन्सी को ज्यादा प्रासंगिक, प्रभावोत्पादक बनाने एवं ग्रामीण विकास में इसकी अर्थपूर्ण भूमिका की सुनिश्चतता के लिए पूर्णतः स्वैच्छिक एवं स्वतंत्र निकाय बनकर रहना होगा। उनके कोष प्राप्त करने का जरिया ऐसा नहीं होना चाहिए कि वे अपना स्वैच्छिक एवं स्वतंत्र रूप ही खो बैठे।

रामकृष्ण मिशन का योगदान

रामकृष्ण मिशन आश्रम पुनरिया घाट, कलकत्ता के छात्रों ने 1952 में कलकत्ता की तंग बस्तियों में रामकृष्ण मिशन लोक शिक्षा परिषद के माध्यम से समाज सेवा कार्यक्रम का प्रारम्भ किया। 1955-56 में मिशन ने अपना कार्यालय खोला। दक्षिणी 29 परगना जिलों के गांवों में भी इसकी गतिविधियां चलने लगी। परिषद ने आरम्भ से ही ग्राम स्तर पर युवक मंडल बनाने की नीति अपनाई ताकि युवा लोग अपने क्षेत्र के विकास की जिम्मेदारी स्वयं सभालने लगें। धीरे-धीरे परिषद का काम पश्चिम बंगाल के 11 जिलों के करीब 2000 गांवों तक फैल गया। इस समय 579 युवक मंडल परिषद की गतिविधियों में सहयोग दे रहे हैं। आरम्भ में परिषद ने प्रौढ़ शिक्षा तथा बाल कल्याण जैसे कार्य अपने हाथ में लिए, किन्तु अब ग्रामीण जीवन के सभी क्षेत्रों में वह सक्रिय है।

गोवों में काम करते हुए परिषद के कार्यकर्ताओं को महसूस हुआ कि स्वच्छ पेयजल तथा सफाई की कमी ग्रामीण लोग खासकर बच्चों के खराब स्वास्थ्य का मुख्य कारण है। 1980 के दशक के आरम्भ से परिषद ने पर्यावरण स्वच्छता कार्यक्रम शुरू किया जिसमें लोगों को साफ-सुथरे शौचालय बनाने को प्रोत्साहित किया जाता है। 1980 के दशक के मध्य में परिषद को नरेन्द्रपुर के आस-पास के गांवां तथा दूरदराज के कुछ गांवों में दो गड्ढों वाले शौचालय बनाने के लिए युनीसेफ से वित्तीय सहायता मिली। इन गांवों मे मुसलमानों तथा अनुसूचित जातियों की आबादी ज्यादा है। मिशन ने आरम्भ से ही शौचालयों के लिए शत-प्रतिशत सब्सिडी न देने की नीति का अनुसरण किया। शुरू के 1700 शौचालय 60 प्रतिशत सब्सिडी से बनाये गये। बाकी राशि का भुगतान अभ्यार्थियों द्वारा किया गया। यूनीसेफ से प्राप्त 1,30,000 रुपये की सहायता से 1987 में पश्चिम बंगाल के तीन जिलों में 3 मंडलों के माध्यम से स्व वित्त स्वच्छता कार्यक्रम शुरू किया गया। 1989 तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 246 शौचालय बनाये गये।

स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका

स्वैच्छिक संस्थाएं शिक्षा, चिकित्सा, कुटीर उद्योग, पेयजल, प्रौढ़ शिक्षा जैसे कार्यों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। इसके लिए इन संस्थाओं को सरकार से अनुदान मिलने की भी व्यवस्था है। इसके अलावा स्वयंसेवी संस्थाएं परियोजना के माध्यम से भी अपने लक्ष्यों को पूरा करती हैं। स्वयंसेवी संस्थाएं वास्तव में सरकार और जनता के बीच की कड़ी होती हैं। ऐसी संस्थाओं का कार्य न केवल जनता और सरकार के मार्गदर्शक का होता है अपितु उसे जनता का हितैषी भी होना चाहिए। स्वयंसेवी संथाओं का काम पिछड़ेपन को दूर करके लोगों में चेतना जागृत करना है। ऐसा ये संस्थाएं ग्रामीण प्रतिभाओं के इस्तेमाल आसानी से कर सकती हैं। उत्कृष्ट ग्रामीण प्रतिभाओं के चयन के लिए स्वयंसेवी संगठनों को स्थानीय आधार पर कार्यकर्ताओं का चयन करना चाहिए। इससे दो फायदे होंगे। पहला जनता और संगठन में उनकी (कार्यकर्ताओं) सीधी भागीदारी होगी और दूसरा समाज से सीधा संपर्क होगा।

इसके लिए संस्था में शिक्षा कृषि चिकित्सा जैसे बुनियादी पहलुओं को गहराई से जानने-समझने वाले लोग हों। जैसे अगर गांव में किसानों को खेती के बारे में नई से नई, अद्यतन जानकारी देनी है तो इसके लिए कार्यकर्ता को कृषि क्षेत्र की पूरी समझ रखनी होगी। इसी प्रकार प्राइमरी शिक्षा से प्रौढ़ शिक्षा तक चलाने वाले कार्यक्रमों में शिक्षा से सरोकार रखने वाले लोग होने चाहिए। स्वयंसेवी संगठनों की कार्यप्रणाली विकास कार्यक्रमों का तरीका वैज्ञानिक नजरिए से परिपूर्ण हो। वैज्ञानिक नजरिए से परिपूर्ण इस मायने में कि गांवों को ज्यादा से ज्यादा आत्मनिर्भर बनाया जा सके। जब तक ग्रामीण क्षेत्र आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक आर्थिक निर्भरता और आर्थिक सुरक्षा का पक्ष प्रबल नहीं बना पाएगा।

कार्य कैसा हो

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं का कार्य क्षेत्र काफी विस्तृत है। स्वैच्छिक संस्थाएं गांवों में रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए

अपने स्तर पर लघु और कुटीर उद्योगों के लिए सम्बन्धित लोगों को प्रोत्साहित कर सकती हैं। अगर उनको कर्ज मिलने की असुविधा होती है तो संस्थाएं इस काम में उन्हें मदद कर सकती हैं। गांवों की किसी भी समस्या से वह सरकार को अवगत करा सकती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में खेती का अपना एक विशिष्ट ढंग होता है। सुबह से लेकर शाम तक शाम से लेकर सुबह तक काम शुरू ही रहता है। दस हजार लोगों की बस्ती के गांव में सस्ती कीमतों पर गर्भवती महिलाओं को पौष्टिक आहार देने के काम में स्वैच्छिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं में सरकार के बजाय स्वैच्छिक संगठन अच्छी भूमिका निभा सकती हैं। विदर्भ के मोवाड़ में जब बंधार टूटने के कारण महापुर से जो जीव हानि हुई तो शवों का निकालने को काम काफी समय तक चला जिसे सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा स्वैच्छिक संगठनों ने अच्छी तरह किया। विदर्भ में कॉर्पोरेशन और जिला परिषदों की स्कूलों की तुलना में निजी स्कूलों में पढ़ाई अच्छी होती है। "वनराई" नामक निजी संस्था का सिर्फ विदर्भ में ही नहीं अपितु पूरे महाराष्ट्र में काम अच्छा चल रहा है। सरकारी कार्यक्रम द्वारा वृक्षारोपण जो होता है उसमें से 50 प्रतिशत वृक्ष एक साल के भीतर ही मर जाते हैं।

लघु और कुटीर उद्योग विकसित करके स्वैच्छिक संगठन ग्रामीण विकास में अपनी भूमिका अदा कर सकती हैं। कर्नाटक में चंदन उद्योग, रेशम उद्योग, साबू और हस्तकला तो तमिलनाडू में चमेली, जास्वंद, मोगरा का अर्क, तेल उद्योग, सोनामुखी औषधि वनस्पति का निर्माण, गुजरात में इसबगोल वनौषधि का निर्माण, महाराष्ट्र में द्राक्षी से कई उत्पादन, और बंगाल, असम में चाय और अन्य कई उत्पादन आदि लाभकारी उद्योग हैं। इन सब उद्योगों को विकसित करके स्वैच्छिक संस्थाएं भारत को वैभवशाली बना सकती हैं।

अहमदनगर की सिंपल हैन्डिक्राफ्ट संस्था विविध वस्तुएं बनाती है। उनका निर्यात भी किया जाता है। तेहरान के अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शन में अहमदनगर में तैयार की हुई वस्तुओं ने पारितोषिक प्राप्त किया और उनको प्रसिद्धि भी अच्छी मिली।

भारत में आज स्वयंसेवी संस्थाओं के सामने कई आर्थिक और व्यवहारिक समस्याएं हैं। इन्हें सरकारी अनुदान मिलने में काफी परेशानियां झेलनी पड़ती हैं। परिणामस्वरूप उनको कार्यों में रुकावट पैदा होती है। स्वैच्छिक संगठनों में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन बहुत ही कम होते हैं इसलिए ये संस्थाएं बेहतर कार्य करने में सफल नहीं हो पाती और चंद दिनों में ही लोगों का विश्वास इन संस्थाओं से उठ जाता है। इसके लिए सरकार को चाहिए कि स्वयंसेवी संस्थाओं को पूरा प्रोत्साहन और मदद दे, ताकि ग्रामीण विकास और उत्थान में ये संस्थाएं अपना सकारात्मक योगदान दे सकें।

बी-2/20, तीसरा माला,
पत्रकार सहनिवास,
अमरावती रोड, महाराजबाग के पास,
नागपुर-440001 (महाराष्ट्र)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशु अनुसंधान का योगदान

□ डॉ० रमेश दत्त शर्मा □

करनाल के पास रसूलपुर गांव की सिमरो । उसका पति अजमेर सिंह 13-14 वर्ष पूर्व घर से लापता हो गया था । सिमरो के पास अपना पेट पालने के अलावा दो लड़कियों की भी जिम्मेदारी है ।

एक और गांव छपरा की कृष्णा विधवा हो गई । चार बच्चे हैं उसके । एक लड़का अपंग है । कृष्णा के सिर पर भारी बोझ है, अकेले गृहस्थी चलाने का ।

एक और विधवा नाम झीमर । जब उसके पति का स्वर्गवास हुआ, उसका छोटा बच्चा चंद महीने का था । एक लड़का चार वर्ष का और एक लड़की 11 वर्ष की । बच्चा छोटा होने के कारण बेचारी मजदूरी भी नहीं कर पा रही थी ।

इन तीनों विधवाओं को गरीबी से उबारा राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान की डेरी-प्रौद्योगिकी ने । असल में फूसगढ़, रांवर, रसूलपुर और छपरा की 10 विधवाओं को गरीबी से उबारने में डेरी प्रौद्योगिकी को प्रयोग के तौर पर चुना गया था । इनको करनाल के जिला प्रशासन ने बैंक की मदद से चार हजार रुपया कर्ज दिलाकर भैंस दिला दी थी । लेकिन इन्हें दूध के इतने पैसे नहीं मिलते थे कि वे कर्ज की किश्त चुका पातीं । गांव का ग्वाला उनसे ढाई-तीन रुपये किलो में दूध खरीद लेता था । फूसगढ़ की परसीदेवी बड़ी मेहनत से भैंस पाल रही थी, लेकिन उसकी भैंस रोजाना 5 किलो ही दूध देती थी, जिसके उसे 15 रुपये मिल जाते थे ।

इन सबके दिन फिरे, जब इन्होंने राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान से पनीर बनाने की तकनीक सीखी । अब कृष्णा 7 किलो पनीर बनाकर शहर में बेचने के लिए भेज देती है । परसा 4 किलो दूध का पनीर बना रही है । सिमरो 6 किलो दूध का पनीर बनाकर भेज रही है । एक किलो दूध से 200 ग्राम पनीर निकलता है । पनीर बनाने का तरीका बड़ा आसान है । दूध उबालना है और उसमें सिट्रिक मिला देनी है । 10 मिनट के अंदर दूध फट जाता है । फटा दूध छान लो और पनीर अलग कर लो । 5 लीटर दूध के लिए 10 ग्राम सिट्रिक एसिड काफी है । सिट्रिक एसिड को एक लीटर पानी में घोलकर दूध में धीरे-धीरे डालते हैं, जब तक फट न जाये । फिर मलमल के कपड़े में जल्दी से गरम-गरम छान लेते हैं । 20 मिनट तक वजन से दबाकर रखें और फिर वर्गाकार काटकर ठंडे पानी में दो-तीन घंटे तक डाले रखो । लो, जी बन गया पनीर । गांव का एक नौजवान महिलाओं से पनीर इकट्ठा करके करनाल जाकर बेचने लगा । बे-सहारा विधवाओं के दिन फिर गये ।

डेरी-प्रौद्योगिकी को अधिकांश अभी तक बड़े डेरी-उद्योगों ने ही अपनाया है, जबकि डेरी प्रौद्योगिकी और पशुपालन को गरीबी हटाने के कारगर साधन के रूप में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा सकता है । इसी दृष्टि से 11 जून, 1988 को डेरी विकास को भी तकनीकी मिशनों का अंग बनाया गया था । इसने जून 1989 से काम शुरू किया । इसमें राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड के आपरेशन फ्लड कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रम को भी शामिल किया गया है । सन् 1995 तक डेरी सहकारिता को देश के 270 जिलों में फैलाने का इरादा है । इस तरह ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी डेरी समितियों की संख्या 83 हजार तक बढ़ा दी जायेगी । अप्रैल, 1991 में मिल्कशेड यूनियनों की संख्या 174 थी, जबकि डेरी मिशन 1995 तक इनकी संख्या 190 तक बढ़ाना चाहता है । सन् 1990-91 में दूध का उत्पादन 514 लाख टन प्रतिवर्ष था । यह 1995 तक 610 लाख टन के स्तर तक पहुंचाया जायेगा । दूध की उपलब्धता सन् 1990-91 में 173 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन थी । यह 1995 तक 186 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति तक बढ़ाई जाएगी । अप्रैल, 1991 में प्रतिदिन 95 लाख 30 हजार लीटर दूध इकट्ठा किया जा रहा था । इसे 1995 तक 150 लाख लीटर प्रतिदिन तक बढ़ाने का विचार है ।

इसी प्रकार 1995 तक दूध को प्रतिदिन संसाधित करने का लक्ष्य 220 लाख लीटर का रखा गया है, जबकि 1991 में 146 लाख 57 हजार लीटर दूध संसाधित किया जा रहा था । यह तभी सम्भव होगा, जब पशुओं की उत्पादकता बढ़ेगी और प्रौद्योगिकी में सुधार किया जायेगा । सन् 1987 में एक गाय का औसत 390 लीटर दूध प्रति ब्यांत का पड़ रहा था, जिसे 1995 तक 650 लीटर तक बढ़ाना होगा और भैंस का दूध 910 लीटर से 1020 लीटर प्रति ब्यांत तक पहुंचाना

होगा ।

डेरी विकास के इन लक्ष्यों के साथ ही ग्राम विकास के लक्ष्य भी जुड़े हुए हैं । इनकी पूर्ति के लिए नई तकनीकों को बड़े पैमाने पर अपनाना जरूरी होगा । अब भी देश में पैदा होने वाला केवल 12 प्रतिशत दूध ही लगभग 252 डेरी संयंत्रों में आ रहा है । इनमें हर रोज 122 लाख लीटर दूध संसाधित किया जाता है । अभी केवल 528 शहरों में यह दूध वितरित किया जाता है और प्रतिदिन लगभग 30 करोड़ उपभोक्ता इसका लाभ उठा रहे हैं । इस तरह डेरी-सेवाओं के विस्तार की संभावनाएं अपार हैं और उसी के साथ डेरी द्वारा ग्राम विकास की ।

नस्ल सुधार

नई तकनीकों में नस्ल सुधार के लिए कृत्रिम गर्भाधान को बड़ी तेजी से फैलाया गया है । मार्च, 1991 तक देश भर में 30 हजार कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र खोले जा चुके थे और 208 लाख गर्भाधान किये जा चुके थे– गाय में भी और भैंस में भी । इस तकनीक में सुधरी नस्ल के सांड और भैंसे का वीर्य शून्य से 195 डिग्री नीचे तरल नाइट्रोजन में जमाकर वर्षों तक रखा जा सकता है । इसी को कृत्रिम गर्भाधान के लिए इस्तेमाल किया जाता है । हालांकि विश्व की कुल गायों की 15 प्रतिशत हमारे देश में है, लेकिन उनकी दूध पैदा करने की क्षमता इतनी कम है कि वे विश्व में कुल उत्पादित दूध का केवल 3.2 प्रतिशत ही जुटा पाती हैं । हमारे देश में कुल दूध का 45 प्रतिशत गाय से प्राप्त होता है, लेकिन केवल 27 प्रतिशत गाय ही दूध देती हैं ।

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान में वर्षों से चलाये जा रहे नस्ल सुधार कार्यक्रम के फलस्वरूप ''ब्राउन स्विस'' और ''साहीवाल'' तथा ''लाल सिंधी'' नस्लों के बीच संकरण के फलस्वरूप संकर नस्ल ''करन स्विस'' तैयार की गई है, जो एक ब्यांत में 3500 लीटर तक दूध देती है । इसी प्रकार ''होल्स्टीन फ्रीसियन'' और थारपारकर नस्लों के संकरण से 3800 लीटर दूध प्रति ब्यांत देने वाली ''करन फ्रीस'' नस्ल तैयार की गई । आगे 4000 लीटर तक दूध पांचवीं ब्यांत तक भी लगातार देने वाली नस्लें भी आने वाली हैं । इन सुधरी नस्लों की बछिया पशुपालक ऊंचे दाम पर भी खरीद ले जाते हैं । मेरठ में स्थित गाय प्रजनन निदेशालय भी होल्स्टीन– फ्रीसियन और साहीवाल के संकरण से अधिक दूध देने वाली संकर नस्ले तैयार करने में लगा है ।

इसी तरह भैंस की नस्ल सुधारने का काम केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार को सौंपा गया है । यहां पर मुर्रा नस्ल की भैंस 305 दिन के दुग्धकाल में 3000 किलोग्राम तक दूध देती हैं । कृत्रिम गर्भाधान से अखिल भारतीय समन्वित भैंस सुधार परियोजना के अंतर्गत 4000 लीटर तक दूध देने वाली सुधरी भैंस पैदा की गई हैं ।

नस्ल सुधार की एक और तकनीक है भ्रूण रोपण । इसमें सुधरी नस्ल की गाय या भैंस को हार्मोन देकर उनसे ज्यादा अण्डे प्राप्त किये जाते हैं । भ्रूण रोपण की इस तकनीक से 108 गाय और 30 भैंस गाभिन की गईं और 68 बछिया और 13 पड़िया (भैंस) पैदा की गईं । भ्रूणों को जमाव बिन्दु से नीचे तापमान पर संकलित भी किया जा रहा है । करनाल में इस तकनीक से एक गाय की साल भर में 10 बछिया पैदा की जा चुकी हैं । देश का आधा दूध 3 करोड़ भैंस देती हैं । इनकी नस्ल सुधार कर दूध की पैदावार दुगुनी की जा सकती है । इन पशुओं के लिए चारे दाने का भी पूरा प्रबंध करना होगा।

''डेरी इंडिया 1992'' के अनुसार सन् 2000 में देश की जनसंख्या 99 करोड़ 60 लाख होगी । इनको प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 214 ग्राम दूध उपलब्ध कराने के लिए साल भर में 780 लाख टन दूध पैदा करना होगा । इसके लिए 54 लाख टन चारा-दाना जुटाना होगा । पिछले दो दशक में भारत में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में जो उपलब्धि हासिल की गई, वह अगले दस सालों में ही दुहरानी होगी, जोकि असंभव नहीं है । 8 करोड़ दुधारू पशु हैं, जिनकी क्षमता नस्ल सुधार और अच्छी देखभाल से दुगनी तो की ही जा सकती है ।

बकरी और भेड़ पालन

गांव के गरीबों के लिए तो बकरी ही गाय है । हालांकि बकरी विकास के प्रयास तो पिछले दशक से ही शुरू किये गये हैं, लेकिन फिर भी बकरियों की आबादी में वृद्धि हुई है । सन् 1950 में 470 लाख बकरियां थीं, जिनकी संख्या बढ़कर अब 960 लाख हो गई है । हर साल इनमें से 40 प्रतिशत बकरियां मांस के लिए कट जाती हैं, फिर भी बकरियों की आबादी बढ़ रही है । यह बकरी पालन की लोकप्रियता सिद्ध करता है । बकरी एक तो हर तरह की जलवायु में रह लेती है– पहाड़ों पर, मैदानों में और रेगिस्तानों में । यह दूध, मांस और चमड़ा प्रदान करती है । जम्मू-कश्मीर और लद्दाख की पहाड़ी बकरी की अंगोरा नस्ल से सबसे उम्दा ऊन भी मिलती है– पश्मीना । हमारे देश के कुल दूध उत्पादन में बकरी का योगदान 3.5

प्रतिशत का है। बकरी का दूध औषधीय गुणों से युक्त माना जाता है। बकरी पालने पर खास खर्चा भी नहीं आता। राजस्थान में किये गये एक अध्ययन से यह भी साबित हो गया है कि बकरी पर हरियाली सफाचट करने का आरोप भी झूठा है। मथुरा के पास मखदूम में केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान अधिक दूध पैदा करने वाली 'जमनापारी' और 'बीतल' नस्ल की बकरियों को सुधारने में लगा है। इनका विदेशी नस्ल के 'सानेन' और 'एल्पाइन' से संकरण किया जा रहा है। बकरी पालन से लाखों गरीब परिवारों को जीविका मिल रही है। प्रति बकरी 250 रुपये प्रति वर्ष की कमाई की जा सकती है।

इसी तरह भेड़-पालन भी छोटे और सीमांत किसान और भूमिहीन गरीबों के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। सन् 1951 से 1977 के बीच देश में भेड़ों की संख्या 4 करोड़ के आसपास ही स्थिर रही, लेकिन 1982 में बढ़कर 480 लाख हो गई। सन् 1951 में 275 लाख किलोग्राम ऊन पैदा की जाती थी, जोकि 1990 में बढ़कर 417 लाख किलोग्राम तक पहुंच गई। ऊनी कपड़ों और गलीचों वगैरह के निर्यात से भारत अब हर साल 500 करोड़ रुपये से अधिक की विदेशी मुद्रा कमा रहा है। हमारे देश में भेड़ों की कोई 32 नस्लें पाई जाती हैं, जिनके सुधार के लिए बराबर प्रयास किये जा रहे हैं। जयपुर के पास अविकानगर (पुराना नाम मालपुरा) में केन्द्रीय भेड़ और ऊन अनुसंधान संस्थान ने अधिक और उम्दा ऊन देने वाली भेड़ों की संकर नस्ल तैयार करके भेड़ पालकों को उपलब्ध कराई हैं। अभी हमें हर साल 250 लाख किलोग्राम उम्दा ऊन बाहर से मंगानी पड़ती है, जिसे संकर नस्लें अपनाकर काफी घटाया जा सकता है।

खरगोश पालन

अंगोरा ऊन के लिए खरगोश पालना भी खासतौर से पहाड़ों पर गरीबों की आमदनी बढ़ाने का बड़ा कामयाब ज़रिया साबित हुआ है। खरगोश पालन की सुधरी व सस्ती तकनीकें खोजने और नस्ल सुधार का कार्यक्रम हिमाचल प्रदेश में कुल्लू के पास गडसा में चल रहा है। यहां भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का राष्ट्रीय खरगोश अनुसंधान केन्द्र है। घास-फूस और रसोई से फेंके छिलके वगैरह खाकर ही खरगोश इतनी तेजी से संतान वृद्धि करता है कि खरगोश पालन बड़ा मुनाफे का धंधा बनता जा रहा है।

मुर्गी पालन

मुर्गी पालन के क्षेत्र में हमारा देश हर साल करीब 2600 करोड़ अंडे पैदा करके विश्व में पांचवें स्थान पर आ गया है। अंडे देने वाली मुर्गियों की ऐसी नस्लें तैयार की गई हैं, जो साल भर में 280 तक अंडे देती हैं। बरेली के पास इज्जतनगर में स्थित केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, मुर्गी, बटेर, बत्तख आदि उपयोगी पक्षियों की सुधरी नस्लें और इन्हें पालने के सुधरे तरीके खोजने में लगा है।

मुर्गी पालन में भी दाने का और मुर्गियों को समय पर टीका लगाने तथा रोगों से बचाव का प्रबंध करना और साफ-सुथरे मुर्गीघर बनाना बड़ा जरूरी है। ये सब तकनीकें उपलब्ध हैं और प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाकर मुर्गीपालकों को सिखाई जा रही हैं।

बत्तख पालन भी अपनाया जा सकता है। इसके लिए तालाब की जरूरत नहीं है। बत्तख 70-80 ग्राम वजन के 250-300 तक अंडे दे सकती हैं। "इंडियन रनर" और "खाकी कैम्पबैल" किस्म की बत्तख पालना अधिक मुनाफे का है। एक बत्तख हर रोज 150 ग्राम से 180 ग्राम तक दाना खाती है– मुर्गियों से ज्यादा। लेकिन खर्चा निकल आता है। जापानी बटेर और भी छोटी जगह में पाली जा सकती है। छह हफ्ते में ही बटेर का चूजा तैयार हो जाता है। एक मादा बटेर 10 से 25 हफ्ते में 80 से 100 तक अण्डे देती है। 40 हफ्तों में करीब 180 अण्डे हो जाते हैं। हर अण्डे का वजन 400-500 ग्राम होता है। इज्जतनगर, बरेली के केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान ने बटेर के अण्डों का अचार भी बनाया है। यहां मुर्गी, बत्तख और बटेर पालने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

मछली पालन

मछली पालन भी अब एक विशाल उद्योग बन गया है। ताल-तलैयों और पोखरों में मछली पालकर किसान अपनी आमदनी बढ़ा रहे हैं। दुनिया भर में 145 लाख टन मछली इसी तरह "एक्वा कल्चर" या "जलज संवर्धन" से प्राप्त की जाती है। इस मछली का 84.7 प्रतिशत एशिया-प्रशांत क्षेत्र से पैदा किया जाता है। इस क्षेत्र में भी भारत पीछे नहीं है और बैरकपुर, भुवनेश्वर तथा मद्रास में क्रमशः मीठे पानी और खारे पानी में मछली पालने के केन्द्रीय संस्थाओं ने सुधरी तकनीकें खोजकर मछुआरों को उपलब्ध कराई हैं। उदाहरण के लिए भारत में 65 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में खारे पानी में मछली पालन का धंधा चल रहा है। लेकिन इसमें से 52 हजार हेक्टेयर में परंपरागत तरीके ही अपनाए जाते हैं। मद्रास के "सेण्ट्रल

इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रैकिश वाटर एक्वाकल्चर" के मछली विशेषज्ञों ने खारे पानी में झींगा पालने की तकनीक उन्नत कर ली है। झींगा (प्रान) सबसे महंगा बिकता है और इसकी एक फसल 100 से 120 दिन में तैयार हो जाती है। आंध्र प्रदेश में 6,000 हेक्टेयर से अधिक खारे पानी के तालों में झींगा चल रहा है। झींगा बेचकर विदेशी मुद्रा कमाई जा रही है। श्रिम्प झींगा भी अच्छी कमाई करता है। अगर 10 लाख हेक्टेयर खारे पानी में 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से 20 लाख टन झींगा हर साल पैदा किया जाय, तो 50 रुपये प्रति किलो बेचकर 10,000 करोड़ रुपये कमाये जा सकते हैं और 40 लाख लोगों को रोजगार मुहैया किया जा सकता है।

भारत के पास 30 लाख हेक्टेयर जल क्षेत्र हैं। प्रति हेक्टेयर 2 टन भी मछली पैदा करें तो 20 लाख लोगों को मछली पालन से रोजगार उपलब्ध हो सकता है। अभी तो हम केवल 40 प्रतिशत जल स्रोत ही मछली उत्पादन में इस्तेमाल कर रहे हैं। समुद्र से 45 लाख टन मछली पकड़ी जा सकती है, जबकि हम केवल 20 लाख टन मछली ही हर साल ले पाते हैं। स्थलीय जल स्रोतों से करीब 16 लाख टन मछली ले रहे हैं, जिसे आराम से दुगुना किया जा सकता है। मछली विशेषज्ञ डॉ० एस०एन० द्विवेदी के अनुसार ताल-तलैयों और बांधों वगैरह से मीठे और खारे पानी के सभी स्रोतों को मिलाकर भारत प्रतिवर्ष 275 लाख टन मछली पैदा कर सकता है। वर्तमान तकनीकों और साधनों से ही 70 लाख टन मछली स्थलीय जल स्रोतों से मिल सकती है।

खेती के साथ-साथ मछली पालन अपनाकर किसान प्रति हेक्टेयर 40 हजार रुपये तक कमा सकते हैं। इसके साथ ही पशुपालन, डेरी, मुर्गीपालन आदि भी शामिल कर लिए जाएं तो आमदनी कई गुनी बढ़ाई जा सकती है। इससे फसल की छीजन भी काम में आयेगी। पशुओं का गोबर, पक्षियों का बीट अच्छी कम्पोस्ट खाद और बायो गैस बनाने में काम आयेगी। यही टिकाऊ खेती का मूल मंत्र है कि एक की छीजन दूसरे के काम आये।

अगर सचमुच गांवों से गरीबी हटानी है तो मिश्रित कृषि का प्रसार आवश्यक है। इसमें फसल और पशु-उत्पादन दोनों में वृद्धि होगी और ग्रामीण जीवन में समृद्धि आयेगी। लेकिन इसके लिए वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देना आवश्यक है। अब हमारे नीति-निर्माता हर तकनीक बाहर से लाने के लिए बेचैन हैं। विदेशी तकनीकें देशी जमीनों पर नहीं रोपी जा सकतीं। विदेशी नस्लें भी तभी कामयाब रहीं, जब उनका संकरण देशी नस्लों से कराया गया। यही बात अन्य तकनीकों पर भी लागू होती है। जिस तरह डेरी उद्योग डा० वी० कुरियन जैसे सूत्रधार के नेतृत्व में सहकारिता के आधार पर फल-फूल रहा है, वैसे ही अन्य क्षेत्रों में भी सहकारिता का विकास हो तभी गांवों का उद्धार होगा और तभी देश का।

प्रधान संपादक 'खेती'
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
603, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा
नई दिल्ली-110 012

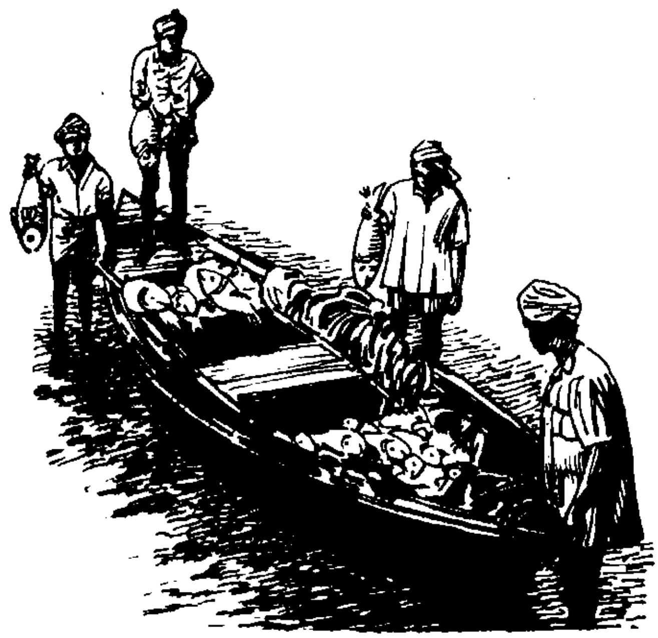

अपनी कमायी रोटी का सुख

□ महेशचन्द्र श्रोत्रिय □

लक्ष्मण को आज पूरे तीन वर्ष हो गये जब उसने अपने धंधे के लिये बैंक से लिया कर्ज (सारा का सारा) चुकाने की सौगंध खाई थी।

आज वह खुश था क्योंकि उसने बैंक से लिये कर्ज की राशि चुका दी थी। अपनी आखरी किश्त बैंक को चुका कर मानों वह मुक्त हो गया था।

लेकिन इस सब के पीछे एक लम्बे संघर्ष की कहानी है। उसे आज भी मालूम है जब वह 10-11 वर्ष का था तो पांचवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ सका। घर में उसके पांच भाई, पिता गरीब और गुजारा सिर्फ थोड़ी सी खेती बाड़ी से। पिता ने बतला दिया कि वे उसे आगे नहीं पढ़ा सकते। सौतेली मां ने कहा कि वह उसे रोटी नहीं देगी। "दो वक्त का भोजन खाना है तो कमाओ कुछ भी करो, मजदूरी करो"। बारम्बार उसकी मां के कहे यह शब्द उसे याद आते।

वह खुश था कि अब इस घर में नहीं रहेगा। छोटी उम्र में ही वह अहमदाबाद चला गया। वहां एक आवास गृह में छोटी सी नौकरी कर ली। शुरू में 300 रुपये मासिक पारिश्रमिक मिलता लेकिन 24 घन्टे काम और उस पर भी मालिक की झिक झिक उसे बर्दाश्त नहीं होती।

एक मन तो किया वह वापस अपने के गांव देवलिया लौट जाये। लेकिन फिर ख्याल आया कि वहां भी क्या रखा है। उसने निश्चय किया वह खुद अपना धन्धा करेगा। उसने अहमदाबाद में ही फेरी करके नमकीन बेचने का निश्चय किया। दो पैसे हाथ में आने लगे तो पिता की सलाह पर उसे शादी के लिये राजी होना पड़ा। अब वह 20-21 वर्ष का हो गया था। लक्ष्मण ने एक छोटी सी खोली ली जिसे छोटा सा कमरा कह सकते हैं, किराये पर लेकर रहने लगा। इस सब के बावजूद उसकी पत्नी बीमार रहने लगी और एक दिन लम्बी बीमारी के बाद वह चल बसी। लक्ष्मण का अब परदेश में कोई नहीं था। वह उदयपुर आ गया। थोड़े दिन मजदूरी की। फिर उसने निश्चय किया कि वह ठेले पर फल बेचेगा। मगर ठेला खरीदने के लिये उसके पास पैसे नहीं थे। हिम्मत करके ठेला किराये पर लिया। अब वह फल बेचा करता था। एक दिन राजस्थान बैंक के कैशियर श्री औदिच्य उसके ठेले पर फल खरीदने आये। जब उन्हें मालूम हुआ कि लड़का मेहनती है और ठेला भी किराये पर है तो उन्होंने लक्ष्मण को स्वरोजगार के लिये बैंक से कर्ज दिलाने की योजना बताई। उसने तुरन्त खुश होकर बैंक से ऋण प्राप्त करने के लिये फार्म भरने की कार्यवाही पूरी की। उसे 3000 रुपये का कर्ज मिला। कर्ज मिलते ही उसने किराये के ठेले को छोड़ कर अपना ठेला लिया। फल खरीदे। अब उसने ठान ली कि कर्ज चुकाते ही वह जूस की दुकान भी खोलेगा। तीन चार वर्ष तक उसने परिश्रम करके कुछ बचत भी की और गुजारे लायक रोटी कमाने लगा। लक्ष्मण अब थोड़ा पैसा बचत करके पोस्ट ऑफिस में जमा कराने लगा। सुबह से शाम तक फल बेचने का काम करने से वह फतहपुरा चौराहे पर फलवाले के नाम से मशहूर हो गया।

आज उसके कर्ज की आखरी किश्त भी बैंक में जमा हो गयी। वह बहुत खुश था। क्योंकि उससे कोई उधार वसूली करने नहीं आयेगा।

अब और वर्ष बीतने लगे उसकी मेहनत रंग लाई। आज लक्ष्मण की उदयपुर के फतहपुरा चौराहे पर जूस की दुकान है। उसने कभी सोचा भी न था कि मामूली ठेला वाला कभी जूस की इतनी बड़ी दुकान लगा लेगा। अपनी सफलता पर वह फूला नहीं समाता है।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी
उदयपुर

समन्वित ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण योजनाएं

विजय दूबे

ग्राम विकास के लिए विभिन्न विभागों की योजनाओं को सफल रूप से क्रियान्वित करने हेतु एवं हितग्राहियों को स्थाई लाभ देने के उद्देश्य से जिला प्रशासन उज्जैन द्वारा कई महत्वपूर्ण योजनाएं हाथ में ली गई हैं।

उज्जैन के कलेक्टर श्री डी. एस. मिश्र के अनुसार जिला प्रशासन द्वारा लागू की गई "नव-जीवन" योजना के तहत ग्रामीण सीलिंग अधिनियम के अंतर्गत अतिशेष घोषित भूमि के आवंटियों को "जीवनधारा" योजना के तहत सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने का निणर्य लिया गया है एवं उन्हें सिंचाई हेतु आई.आर.डी.पी. के तहत पम्प-सेट भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त आवंटियों को कृषि विभाग द्वारा निःशुल्क बीज के मिनिकिट्स भी प्रदान किये जा रहे हैं। इसके फलस्वरूप बंटित जमीन पर आवंटियों का कब्जा बरकरार रहेगा। इस योजना की शुरूआत उज्जैन तहसील के ग्राम चिन्तामण जवासिया से हुई है। विभागीय अधिकारी (राजस्व), उप संचालक कृषि एवं विकास खण्ड अधिकारी के संयुक्त तत्वाधान में करीब 15 एकड़ जमीन में चालू रबी मौसम में चना फसल की बुआई की गई। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि यह अतिशेष भूमि सन् 1989 में 7 अनुसूचित जाति भूमिहीन व्यक्तियों को आबंटित हुई थी, लेकिन मूल धारक के डर के कारण अब तक उन्होंने उस जमीन पर खेती नहीं की थी।

इसी प्रकार जीवनधारा योजना के अंतर्गत लाभान्वित सभी हितग्राहियों को आई.आर.डी.पी. के तहत पम्प-सेट उपलब्ध कराये जायेंगे एवं उन्हें स्थाई विद्युत कनेक्शन दिलाये जायेंगे। इन्हें आसानी से बीज एवं खाद उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों का सदस्य भी बनाया जायेगा। इसके लिए एक विशेष अभियान चलाया गया है एवं इन सभी हितग्राहियों को सहकारी समितियों का सदस्य बना लिया जायेगा। आई.आर.डी.पी. योजना के अंतर्गत दुग्ध इकाई के सभी हितग्राहियों को दुग्ध समितियों का सदस्य भी बनाया जायेगा। इसका उद्देश्य हितग्राहियों को निजी डेयरी वालों के शोषण से मुक्त करना है एवं उन्हें दुग्ध का उचित मूल्य दिलाना है। साथ ही उन्हें दुग्ध संघ से पशु उपचार सुविधाएं, चारा एवं अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध होंगी। चालू वर्ष में इस जिले में करीब 1800 हितग्राहियों को दुग्ध इकाई का वितरण किया जा चुका है, जिन्हें दुग्ध समितियों का सदस्य बनाये जाने का लक्ष्य भी रखा गया था।

कलेक्टर श्री मिश्र ने आगे बताया कि ग्रामीण इलाकों में महिलाओं का सामाजिक स्तर बढ़ाने के उद्देश्य से उन्हें जमीन का स्वामित्व प्रदान करने की दृष्टि से "गृहलक्ष्मी" योजना चलाई जा रही है। इस योजना के तहत अब तक 360 महिलाओं को ग्रामीण आवास योजना के भूखण्ड का स्वामित्व प्रदान किया जा सका है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत इंदिरा आवास को भी महिलाओं के नाम पर वितरित किया जायेगा। इसके साथ ही सीलिंग अधिनियम के तहत अतिशेष घोषित होने वाली सभी कृषि भूमि प्राथमिकता के आधार पर महिलाओं के नाम पर आवंटित की जायेगी। इंदिरा आवास एवं ग्रामीण आवास योजना के अंतर्गत लाभान्वित महिला हितग्राहियों को महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा संचालित "डवाकरा" योजना के तहत लाभान्वित किया जायेगा। इसके लिए आवंटित खण्ड पर व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिया गया है एवं महिलाओं को रेशम उद्योग, हाथ करघा उद्योग, अगरबत्ती बनाना, टाट पट्टी, झाड़ू एवं अन्य कई चलने योग्य योजनाओं के तहत प्रशिक्षण देकर उन्हें इसी व्यवसाय में स्थापित करने हेतु प्रयास किया जायेगा।

विधवा, परित्यक्ता एवं निःसहाय महिलाओं को जीने का साधन उपलब्ध कराने हेतु जिला प्रशासन द्वारा "स्वयंसिद्धा" नामक एक अभिनव पुनर्वास योजना शुरू की गई है। प्रथम चरण में इस योजना को उज्जैन शहर में ही शुरू किया गया है, जहां 60 विधवा, परित्यक्ता एवं निःसहाय महिलाओं को राज्य वस्त्र निगम की मदद से साड़ी व कपड़ा बुनने का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। प्रशिक्षण के पश्चात उन्हें बैंक ऋण के माध्यम से करघा एवं आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध कराया जायेगा एवं परित्यक्ता महिलाओं को निर्वाह भत्ते के प्रकरण दायर करने में विधिक सहायता उपलब्ध कराई जायेगी। निरक्षर महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएं भी चलाई जायेंगी। इसके द्वितीय चरण में इस प्रकार की योजना प्रत्येक विकास खण्ड स्तर पर भी शुरू की जायेगी

इ० डब्ल्यू०एस०, 428,
मुनीनगर, उज्जैन (म.प्र.)

नवनिर्माण और स्वैच्छिक संस्थाएं

□ डा० नारायणदत्त पालीवाल □

हमारे देश में लगभग सात लाख से भी अधिक गाँव हैं। कृषि प्रधान देश होने के कारण ग्रामीण विकास योजनाओं का भारत की अर्थव्यवस्था में बड़ा महत्व है। देश की लगभग 77 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है और इसमें से 25 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे रहती है। यही कारण है कि हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी जाती रही है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में तो इस विषय को प्राथमिकता दी गयी है। यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गाँव का विकास केवल सरकारी योजनाओं पर ही निर्भर नहीं वरन् इसकी सफलता आम लोगों के सहयोग पर भी बहुत निर्भर करती है। यदि गांव में ऐसी संस्थाएं हों जो अपने स्तर पर विकास के लिये काम करें और सरकारी योजनाओं की उपयोगिता तथा महत्व जन सामान्य तक पहुंचाएं तो लोग अपने आप विकास कार्यों में सहभागी बनने लगेंगे। ये संस्थाएं अपनी योजनायें स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल बना सकती हैं। स्थानीय समस्याओं से परिचित होने के कारण उनके हल के लिये इनके द्वारा ऐसे कार्यक्रम अमल में लाये जा सकते हैं जो जनसामान्य की कठिनाइयों को हल करते हुये सुविधायें उपलब्ध कराने में सहायक हों। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में चहुंमुखी विकास की संभावना बढ़ जाती है। सरकारी विकास-योजनाओं के साथ-साथ पूरक योजनाओं की प्रेरक के रूप में स्वयं सेवी संस्थायें बहुत सहायक सिद्ध हो सकती हैं। यहाँ कुछ ऐसे कार्यक्रमों का संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है जिनमें स्वैच्छिक संस्थाएं अपना योगदान कर सकती हैं।

शैक्षिक कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़-शिक्षा एक ऐसी योजना है जिसे स्वयं सेवी संस्थायें अपना सकती हैं। आज साक्षरता अभियान को तेजी से चलाने की आवश्यकता है। देश में 11 करोड़ से भी अधिक लोगों को साक्षर बनाना है। लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं। प्रौढ़ शिक्षा के लिए विद्यालय व केन्द्र खोले गए हैं। ऐसे विद्यालयों को सरकारी मान्यता मिलने पर उनकी व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है। स्वयंसेवी संस्थाएं तो अपने प्रयास से सामान्य स्कूल चलाती हैं। उत्तर प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र इस बात का ज्वलंत उदाहरण रहा है जहां लोगों ने अनेक हाई स्कूल और इंटर कालेज संस्थाओं की सहायता से स्वयं खोले और सरकार की प्रतीक्षा नहीं की। अब ऐसे विद्यालय सरकार ने अपने अधिकार में ले लिये हैं। इससे लड़के और लड़कियों, दोनों की उचित शिक्षा का प्रबंध हो सकता है। महिला व बाल शिक्षा, छात्र कल्याण तथा प्रशिक्षण के क्षेत्र में गांवों में निजी संस्थाएं व सेवा भाव से बनी संस्थाएं नागरिकों को शिक्षित कर उपयोगी सेवा कर सकती हैं।

पर्यावरण

गांवों में भी पर्यावरण तथा वायु प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। जंगल काटे जाने से खेती तथा इमारतों के लिये भूमि का अधिक उपयोग होने के कारण पेड़ कटते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्वयं सेवी संस्थाएं वहां वृक्षारोपण, बागवानी और वनसंरक्षण द्वारा वातावरण को शुद्ध रखने में सहायता कर सकती हैं। आठवीं योजना में पर्यावरण संतुलन पर जोर दिया गया है। इसके लिए सरकारी व स्वैच्छिक संस्थाओं की योजनाओं और कार्यक्रमों में समन्वय आवश्यक है। चिपको आंदोलन इसका उदाहरण है कि ऐसी संस्थाओं पर्यावरण के लिए क्या कर सकती हैं। हरियाली के प्रति लोगों में दिलचस्पी पैदा करायी जा सकती है। उन्हें प्रदूषण के बारे में सजग कराया जा सकता है। कुंओं, बावड़ियों, जल स्रोतों, जलाशयों, तालाबों, नहरों और नदियों के सफाई कार्यों में इन संस्थाओं द्वारा सहायता दी जा सकती है। इस कार्य के लिए पुरुषों व महिलाओं की अलग-अलग समितियां वातावरण की शुद्धता तथा पर्यावरण सुधार की योजनाएं अपने स्तर पर तैयार करके सहयोग, सुझाव व कार्यक्रम देकर सरकारी मशीनरी व एजेंसियों को सक्रिय कर सकते हैं।

सफाई और स्वास्थ्य

आम तौर पर गांव में सफाई का कार्य विकास ऐजेंसियां, ग्राम सभाएं, विकास खण्ड व स्वास्थ्य विभाग करते हैं। परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में यदि वहीं की स्वयं सेवी संस्थायें इस कार्य मे सहयोग दें तो वह अधिक कारगार हो सकती हैं। रास्तों, घरों, सार्वजनिक स्थानों आदि की सफाई में इनके द्वारा सहायता दी जाती है। सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं में सहयोग करने के लिये जनता में प्रचार और प्रसार की आवश्यकता भी होती है। ये संस्थायें इस कार्य को अच्छी तरह से कर सकती हैं। रोगों के प्रति लोगों को सचेत करना, सस्ते इलाज

की व्यवसथा प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा,माताओं व बच्चों के लिए स्वास्थ्य केन्द्र, प्रसूति-गृह व टीकाकरण कार्यक्रमों में भी ये संस्थाएं सहायता दे सकती हैं।

समाज-कल्याण योजनाएं

ऐसी संस्थाओं का मुख्य कार्यक्षेत्र समाज कल्याण की योजनाओं को अमल में लाना होता है। ये संस्थायें ग्राम-पंचायतों,सहकारी समितियों, विकास-एजेंसियो आदि के कामों में तो सहयोग कर ही सकती हैं, साथ ही ग्राम सुधार के लिए समाज में जागरूकता पैदा कर सकती हैं। योजना कार्यक्रमों की सभी को जानकारी देने के लिए युवा संगठन, मंगलदल, युवा पंचायत, कल्याण समितियों, सेवा समितियों आदि का गठन भी कर सकती हैं। वृद्धों, महिलाओं और बच्चों के लिए ऐसे संगठनों के कार्य बहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। सामाजिक विकास ही उन्नति का आधार है। बाल विकास एवं परिवार कल्याण की अनेक योजनाओं में स्वैच्छिक संस्थाएं सक्रिय हो सकती हैं। महिलाओं को खेती, मजदूरी तथा घर गृहस्थी के कामों में कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। ऐसे में उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और अनेक कठिनाइयां भी उठानी पड़ती हैं। महिला परिवार कल्याण और बाल विकास के क्षेत्र में स्वैच्छिक संगठन विभिन्न प्रकार की जानकारी देने, साधन जुटाने और सरकारी एजेंसियों द्वारा दी जा रही सुविधाओं का लाभ उठाने की प्रेरणा दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त ये संस्थाएं सरकारी एजेंसियों से तालमेल करके आवश्यक समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करके तथा विभिन्न सेवा कार्यों के लिए पहल करके सराहनीय योगदान कर सकते हैं।

समाज कल्याण के कार्यों के अंतर्गत स्वैच्छिक संस्थाएं असहायों, विकलांगों, शारीरिक ओर मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों, विधवाओं और निर्धनों के लिए कई प्रकार की कल्याण योजनाएं चला सकती हैं। इसके लिए सरकारी सहायता के साथ-साथ धनी और सम्पन्न लोगों से भी सहयोग लिया जा सकता है। पुस्तकालयों की व्यवस्था, संध्याकालीन कक्षाएं, मनोरंजन के कार्यक्रम, दस्तकारी अथवा हस्तशिल्प का प्रशिक्षण, सूचना केन्द्रों की स्थापना, रेडियों व दूरदर्शन के कार्यक्रमों की सुविधा, सेवा-शिविर, निःशुल्क चिकित्सा, सुविधा-केन्द्र आदि की व्यवस्था, रोजगार-सूचना, छात्र-कल्याण, निःशुल्क पुस्तक वितरण, गरीबों के लिए कपड़े. दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं जुटाने, उपचार-केन्द्रों की व्यवस्था के क्षेत्र में योगदान की ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी आवश्यकता है। यह उल्लेखनीय है कि सातवीं योजना में स्वास्थ्य के लिए 3400 करोड़ रुपये और परिवार कल्याण के लिए 3200 करोड़ रुपये का प्रावधान था। आठवीं योजना में राशि बढ़ा दी गई है। अब स्वास्थ्य के लिए 7500 करोड़ रुपये और परिवार कल्याण के लिए 6500 करोड़ रुपये रखे गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इस व्यवस्था को पूरा लाभ मिले यह स्वैच्छिक संस्थाओं की जागरूकता पर निर्भर रहेगा।

महिलाओं की समितियां बनाकर उन्हें अपनी और बच्चों की सही देखभाल के लिए उनमें जागरूकता लायी जा सकती है। सरकार द्वारा नारी उत्थान, शिशु-कल्याण और परिवार कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। जनसंख्या की रोकथाम के लिए ग्रामीण क्षेत्रों मे जागरूकता पैदा करने का, लोगों को सावधान करने का काम महत्वपूर्ण है। स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से इस दिशा में तेजी से काम किया जा सकता है। सन् 2000 तक देश की जनसंख्या 100 करोड़ तक हो जाएगी। जब तक इस पर अंकुश नहीं लगेगा तब तक विकास की सारी बातें धरी रह जाएंगी। स्वयंसेवी संस्थाएं जनसामान्य को विकास योजनाओं के प्रति जागरूक करने के लिए जन संपर्क व जन चेतना के कार्यक्रमों द्वारा सहकारिता और विकास योजनाओं के लिये सरकारी संस्थाओं की जानकारी सभी तक पहुंचा सकते हैं। ज्ञान-विज्ञान के इस युग में बदलती हुई आवश्यकताओं के लिये स्वयं योजनायें बनाकर ग्रामीण भाइयों का सहयोग ले सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमदान योजना महत्वपूर्ण है। रास्तों को ठीक करना, नई सड़कें बनाना, गांवों में आवश्यकता के अनुसार पानी की व्यवस्था करना, खेल-कूद के द्वारा युवाशक्ति को बढ़ावा देना, खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन करना आदि कार्यों में भी इन से सहायता ली जा सकती है।

कृषि, सिंचाई तथा पेयजल

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि-विकास होगा तो ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। गांवों में उत्पादन बढ़ाने व अच्छे बीज, उर्वरक, सिंचाई आदि की समस्यायें आज भी बनी हुई हैं। हरित क्रान्ति के क्षेत्र में स्वैच्छिक संगठन सरकारी योजनाओं के साथ भागीदारी कर सकते हैं ग्रामीण क्षेत्रों को कृषि के क्षेत्र में स्वावलम्बी बनाने में स्वैच्छिक संगठन सहायक होंगे। कृषि साधनों, नई तकनीकों और आधुनिक कृषि उपकरणों के बारे में किसानों को जानकारी देने और प्रशिक्षण में सहायता देने का कार्य अच्छे परिणाम ला सकता है। अभी तक केवल 30 प्रतिशत भूमि में ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। लगभग 70 प्रतिशत भूमि वर्षा पर निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और बुरी है। श्रमदान से नहरों की व्यवस्था हो सकती है। जल संसाधनों के उचित उपयोग में ऐसे संगठन उपयोगी सेवा कर सकते हैं। इसी प्रकार पेय जल का संकट ग्रामीण क्षेत्रों में बना हुआ है। आठवीं योजना के प्रारंभ में लगाए गए अनुमान के अनुसार अभी 2824 गांव ऐसे हैं जहाँ जल का कोई स्रोत नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में जल के नए स्रोत

खोजना, उपलब्ध सुविधा का लाभ अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना तथा जलापूर्ति की दिशा में स्वैच्छिक संगठनों को सहयोग करने व निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है। भूमि और जल साधनों की सहायता से उत्पादन बढ़ाने व बंजर तथा मरू भूमि के विकास कार्यक्रमों में भी सहयोग अपेक्षित है। आधुनिक वैज्ञानिक युग का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाने के लिये ये संस्थाएं ऊर्जा और बिजली के क्षेत्र में भी सरकारी योजनाओं में सहभागी बन सकती हैं।

ग्रामीण उद्योग एवं रोजगार

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अंतर्गत घरेलू और कुटीर उद्योगों का बड़ा स्थान है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन उद्योगों की सहायता से वस्तुओं का उत्पादन रोजगार के अवसर भी जुटाता है। घरेलू उद्योगों में बनी वस्तुओं के लिए सहकारी समितियां बनाकर बाजार की सुविधा उपलब्ध कराने में, उत्पादन-कार्य को व्यवस्थित व लाभकारी स्वरूप देने में स्वैच्छिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। महिलाएं कताई बुनाई का कार्य कर सकती हैं। गांवों में मिट्टी के बर्तन, काठ के उपकरण, चटाई बनाने का कार्य, चमड़े की वस्तुओं का उत्पादन, सूती व ऊनी वस्त्रों के लिए कच्चे माल की तैयारी, ताने-बाने का काम, खिलौने बनाने का काम आदि आमदनी का अच्छा स्रोत हैं और बेरोजगारी में भी कुछ हद तक सहायता मिलती है। स्वैच्छिक संगठन कच्चे माल को तैयार माल में बदलने के लिए दिए जाने वाले प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं, कारीगरों की व्यवस्था में सहायता कर सकते हैं, माल बेचने, उत्पादन के लिए ऋण की व्यवस्था, बैंक की व्यवस्था तथा बिक्री की व्यवस्था में सहायता दे सकते हैं, इससे बिचौलियों, कमीशन एजेंटों आदि के शोषण से बचा जा सकता है। दूध, दूध से बनी वस्तुओं व कृषि उपज के लिए मण्डी व्यवस्था के काम में सहायता की जा सकती है। स्वैच्छिक संस्थाएं सरकारी एजेंसियों, बैंकों, सरकारी अनुदान एवं ऋण से संबद्ध संस्थाओं और ग्रामीणों के बीच की कड़ी के रूप में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास की मजबूत धुरी का काम कर सकती हैं। इस प्रकार से संस्थाएं वित्तीय व्यवस्था, उत्पादन सुविधा, संसाधन जुटाने और बाजार की सुविधाएं उपलब्ध कराने में और ग्रामीण लोगों की परंपरागत शिल्प-संस्कृति का संरक्षण भी कर सकते हैं। आधुनिक युग में शिल्पकारों की वंशानुगत दक्षता एवं कला का अन्यथा लोप ही होता जा रहा है। इन संस्थाओं के माध्यम से समितियां बनाकर ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात और परिवहन प्रणाली को भी स्थानीय आवश्यकता के अनुकूल व्यवस्थित किया जा सकता है।

संस्कृति, साहित्य एवं कला

शहरीकरण की प्रवृति एवं विदेशी भाषाओं, तौर तरीकों तथा कथित नई सभ्यता के इस दौर में हम अपनी प्राचीन परम्पराओं, एवं उच्च सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं कला के गौरव की उपेक्षा करते जा रहे हैं। शहर फैल रहे हैं और गांव सिमट रहे हैं। ऐसें में ग्रामीण क्षेत्र इस नए सांस्कृतिक प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं। आज भौगोलिक एवं वातावरण के पर्यावरण के संतुलन की ही आवश्यकता नहीं है वरन् इससे भी अधिक विषैले सांस्कृतिक प्रदूषण एवं मानसिकता से बचने की आवश्यकता है। इस कार्य में हमारी स्वैच्छिक संस्थाएं, चाहे वे सामाजिक हों, सांस्कृतिक हों, साहित्यिक हों या राजनीतिक हों, बड़ा काम कर सकती हैं। इस चुनौती में समाज को उनके द्वारा नई रोशनी, नई राह दी जा सकती है और नया दिशाबोध कराया जा सकता है। आज इस दिशा में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता है। ये संस्थाएं हमारी बोली-भाषा, हमारे आचार-विचारों का और हमारी प्रथा-परम्पराओं का महत्व समझा कर जन-जन के मन में अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं अपनी माटी की महक के प्रति ललक पैदा कर सकती है। हमारे पर्वों, त्यौहारों, उत्सवों का रूप भी बदल गया है। हम अपनी भाषाओं की उपेक्षा कर रहे हैं। हमारी समृद्ध कलाएं भी उपेक्षित हो रही हैं। हमारा समृद्ध शब्द-कोश जो हमारी बोलियों, भाषाओं और जन-जन की वाणी में जीवित है आज नष्ट हो रहा है। ऐसे में चेतना-जन-जागरण और अपनी मानसिकता बदलने की आवश्यकता है। यह काम हमारी स्वैच्छिक संस्थाएं कर सकती हैं और ग्राम-वासियों को उनकी सभ्यता, संस्कृति और परम्परा के प्रति सचेत कर सकती हैं। ये संस्थाएं प्रचार-प्रसार, शोध और शिक्षण द्वारा जागरूकता पैदा करके हमारे लोक साहित्य, हमारी लोक-कलाओं और लोक-संस्कृति के संरक्षण का कार्य कर सकती हैं। अंधविश्वास के अंधेरे से लोगों को नवयुग की रोशनी में आने की प्रेरणा देकर अपनी प्राचीन परम्पराओं, प्रतिष्ठा एवं गौरवपूर्ण अतीत की और ध्यान दिलाया जा सकता है। सांस्कृतिक आयोजनों, साहित्यिक कार्यक्रमों, प्रदर्शनियों, लेखन, अनुसंधान व शोध के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक विरासत को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सकते हैं। जहां आर्थिक सामाजिक विकास हमारे ग्रामीण क्षेत्र के लिए आवश्यक हैं वहीं सांस्कृतिक उत्थान तथा स्वस्थ मानसिकता के विकास की भी परम आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भाषणों, विचार गोष्ठियों, सम्मेलनों, कृषि मेलों, पशु-प्रदर्शनियों, साप्ताहिक बाजारों, हाटों, नुमाइशों, दंगलों, खेल के आयोजनों, तमाशों आदि का बड़ा महत्व है। इन कार्यों में स्वैच्छिक संगठन आगे आकर स्वस्थ वातावरण तैयार करने और लोगों को युग की दौड़ में आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सकते हैं। स्थानीय संपर्क के कारण लोग उनसे प्रभावित भी होते हैं। उन पर इन बातों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ सकता है और

विकास कार्य को नए आयाम मिल जाते हैं तथा समाज की कल्याणकारी कार्यों में रूचि बढ़ती है। सेवाभाव तो ऐसे संगठनों के प्राण होते हैं। इनसे समाज को सदाचार और सदभाव के साथ-साथ लोक कल्याण और परोपकार की प्रेरणा भी मिलती है। आज के इस दौर में इसीलिए इन संस्थाओं की अहम् भूमिका बनी हुई है।

ग्रामीण विकास में सबसे महत्वपूर्ण काम लोगों को पारस्परिक सदभाव का वातावरण बनाकर विकास कार्यों में रूचि लेने के लिए तैयार करना है। आपसी झगड़ों, मुकदमों, जाति-पाति के मामलों, भाई बिरादरी के मतभेदों, छोटे बड़े और ऊँच-नीच की भावनाओं में उलझी ग्रामीण मानसिकता एक तो आपसी एकता के लिए बाधा बन जाती है और दूसरे समाज की शक्ति व्यर्थ की बातों में नष्ट हो जाती है। प्रगति और विकास के कार्यों में इससे रूकावट आती है ऐसी स्थिति में ग्राम-सुधार समितियां, मौहल्ला सुधार संगठन, मानव सेवा संघ, ग्राम विकास परिषद, सेवा समितियाँ, स्वास्थ्य संगठन, कृषक समाज, मजदूर संघ, हरिजन सेवा समाज, दलित उद्धार संगठन, नारी रक्षा समिति, नारी उत्थान मंच, महिला कल्याण संगठन, बाल विकास समिति आदि के समान स्वैच्छिक संगठन अपने अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य के साथ आगे बढ़कर ग्रामीण विकास के रचनात्मक कार्यों को बढ़ावा देकर गांवों की काया-पलट कर सकते हैं। गांवों की परम्परागत पंचायतों द्वारा सामूहिक कल्याण के कार्यों के प्रति गांव के लोगों को सदियों से प्रेरणा दी जाती रही है। इससे पूरा समाज एक परिवार की भांति बन जाता है और सामुदायिक विकास के कार्यों से संबद्ध योजनाओं को कार्यरूप में लाना संभव हो जाता है।

निष्कर्ष

ऊपर दिए गए विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत जैसे प्रजातन्त्र में सरकारी योजनाओं की सफलता के लिए जनता की भागीदारी आवश्यक है। आज जन सामान्य भली-भाँति अपना हित-अहित समझता भी है। उसे अपनी बात सरकार तक पहुंचाने और योजनाओं के गुण-दोष एवं सफलता असफलता की ओर ध्यान दिलाने का अधिकार भी है। शहरों में तो पढ़ाई-लिखाई का व्यापक स्वरूप विद्यमान है परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में अभी कमी है। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की मजबूती, क्रमिक विकास, विकास प्रक्रिया के संतुलन एवं सामुदायिक विकास योजनाओं का उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है और उनके द्वारा व्यावहारिक एवं रचनात्मक सहयोग सार्वजनिक हित के लिए आवश्यक भी हो जाता है। गांवों से गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असंतुलन, बीमारियां, निरक्षरता, जनसंख्या वृद्धि आदि हट जाने पर विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। ऐसी संस्थाएं बहुआयामी योजनाओं में त्वरित गति से कार्यान्वयन की दिशा स्पष्ट करने में सहायक होती हैं। उनके सहयोग का विकास कार्यों और अर्थव्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। संसाधन जुटाने और उनका सही उपयोग करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विकास की गति तेज होगी तो विकासजनित लाभ भी तेजी से मिलेंगे। रोजगार के अवसर बढ़ाने में जनसंख्या के नियंत्रण के लिए जन-जागरण, प्रचार-प्रसार और जागरूकता में, स्वास्थ्य सुधार, पेयजल पूर्ति, सिंचाई व कृषि सुधार, शिक्षा के प्रचार-प्रसार, पर्यावरण संतुलन एवं सांस्कृतिक स्वरूप को निखारने में स्वयं सेवी संस्थाएं अग्रणी बन सकती हैं। ये संस्थाएं स्थानीय हालात, आवश्यकता में लोकहित की दृष्टि से योजनाओं और प्रायोजनाओं की रूप-रेखा तैयार करके विकास कार्यों की प्रगति सुनिश्चित करेंगी। यदि आवश्यक समझें तो सरकारी नीतियों और विशेषकर आर्थिक नीतियों में अपेक्षित परिवर्तन के लिए सरकार को सुझाव देंगी। जन-जागरण, जागरूकता जन-चेतना, सामुदायिक भावना, सहकारिता एवं समाज के लिए कल्याणकारी नीतियों के पक्ष में जनमत की तैयारी और आदर्श नागरिकता की दिशा में रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर विकासशील समाज की स्थापना में सहयोग के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं का आगे आना आवश्यक है। लोगों की भागीदारी या सक्रिय सहयोग के बिना विकास की आशा करना व्यर्थ है। यही कारण है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में जन-सामान्य की भागीदारी और स्वैच्छिक संस्थाओं एवं गैर सरकारी संगठनों की भूमिका पर बल दिया गया है। सरकार द्वारा परिचालित विकास योजनाओं को जन योजनाएं बनाने की दिशा में ऐसी संस्थाएं सहयोग दे सकती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीय विकास के लिए, प्रगति और नव-निर्माण के लिए, मानवीय क्षमता को विकसित और समृद्ध करने के लिए तथा ग्रामीण विकास योजनाओं को नए आयाम देने के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रयास जादू का काम कर सकते हैं।

एच-19/60, सेक्टर-7
रोहिणी, दिल्ली-110085

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक : एक विश्लेषण

□ डॉ. प्रमोद कुमार श्रीवास्तव □

भारत में लघु उद्योगों के संवर्द्धन, वित्तपोषण और विकास के लिए अलग से एक प्रमुख वित्तीय संस्था का अभाव था। इस कमी को दूर करने के लिए भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) की स्थापना हेतु भारतीय लघु विकास बैंक अधिनियम पारित किया गया। सिडबी, विकास बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली संस्था है जिसने 2 अप्रैल, 1990 से कार्य करना शुरू कर दिया। सिडबी को लघु उद्योग विकास निधि और राष्ट्रीय इक्विटी निधि के परिचालन की जिम्मेदारी सौंपी गयी। 28 अप्रैल, 1990 को लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इसका उद्घाटन किया। इस बैंक में नीति निर्धारण हेतु निदेशक मंडल का गठन किया गया जिसमें एक अध्यक्ष और 14 प्रबंध निदेशक हैं। इस बैंक में राष्ट्रीय सलाहकार समिति भी बनाई गई है जिसमें एक सदस्य अध्यक्ष है व 19 सदस्य प्रबंध निदेशक हैं। इसके बाद इसमें क्षेत्रीय सलाहकार समितियां क्षेत्रों के आधार पर बनाई गई हैं, जिसमें सब क्षेत्रों का एक सदस्य ही अध्यक्ष है। पूर्वी क्षेत्र में 8 सदस्य हैं। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में ग्यारह सदस्य हैं, उत्तरी क्षेत्र में दस सदस्य हैं। इसके बाद दक्षिणी क्षेत्र में नौ सदस्य हैं। पश्चिमी क्षेत्र में दस सदस्य हैं। इस बैंक की वरिष्ठ कार्यपालिका में छः महाप्रबंधक हैं। उप-महाप्रबंधक बारह हैं व तैंतीस सदस्य प्रबंधक हैं। इसमें एक वित्तीय सलाहकार और एक सदस्य सलाहकार है।

तालिका में सत्र 1990-91 व 1991-92 के कार्यों का लेखा-जोखा दर्शाया गया है :

तालिका

योजनावार सहायता (करोड़ रुपयों में)

योजनाएं	1990-91		1991-92	
	मंजूरियां	संवितरण	मंजूरियां	संवितरण
पुनर्वित	2052.2	1561.5	2351.0	1634.5
बिल पुनर्भुनाई	240.0	178.6	277.9	201.1
प्रत्यक्ष भुनाई	26.0	20.1	185.3	147.7
मार्केटिंग योजना	0.9	–	10.7	2.9
मूलभूत संरचनागत विकास	2.0	–	2.2	0.2
लीजिंग कंपनियों को सहायता	5.5	0.7	26.0	7.2
संस्थाओं को संसाधन सहायता	75.0	72.1	25.8	17.1
फैक्टरिंग सेवाएं	–	–	7.0	7.0
इक्विटी सहायता	7.1	5.5	11.7	9.7
अन्य	0.1	–	0.5	–
उप योग	2408.8	1838.5	2898.1	2027.4
अल्पावधि बिल	415.0	415.0	560.7	560.7
कुल योग	2823.8	2253.5	3458.8	2588.1

स्रोत : लघु विकास बैंक : वार्षिक रिपोर्ट, 1991-92, पृष्ठ-22

वर्ष 1990-91 में कई नयी योजनाएं शुरू की गयी थीं, विशेषकर मार्केटिंग संगठनों को सहायता प्रदान करने की योजना, प्रत्यक्ष बिल भुनाई तथा अल्पावधि बिल योजना, लघु उद्योग इकाइयों की वास्तविक जरूरतों को पूरा करने के लिए लघु विकास बैंक जो प्रयास करता रहा है उनके परिणाम मिलने लगे हैं। इसमें पुनर्वित व बिल वित्त पोषण योजनाओं (अल्पावधि बिल पुनर्भुनाई योजना को छोड़कर) के अंतर्गत दी गयी कुल सहायता 81% से भी अधिक है। पिछले वर्ष की तुलना में मंजूरियों में 21% तथा संवितरणों में 13% की बढ़ोतरी हुई। प्रत्यक्ष सहायता में नयी तरह की गतिविधियों को लाभ पहुंचाने के वास्ते शुरू की गयी नयी योजनाओं के अंतर्गत प्रत्यक्ष सहायता के हिस्से में निरंतर वृद्धि करने की लघु विकास बैंक की जो नीति है उसी के अनुरूप इन योजनाओं के अंतर्गत कुल मंजूरियों की राशि 1990-91 के 34.5 करोड़ रुपये से बढ़कर 231.6 करोड़ रुपये हो गयी।

सहायता की राशि में संस्थावार में वर्ष के दौरान तीन तरह की प्राथमिक ऋणदाता संस्थाओं अर्थात् राज्य वित्तीय निगमों, बैंकों व राज्य औद्योगिक विकास निगमों को पुनर्वित सहायता मंजूर की गयी। इन तीनों संस्थाओं के संबंध में सहायता की

राशि क्रमशः 1351.9 करोड़ रुपये, 838.4 करोड़ रुपये तथा 1607.7 करोड़ रुपये थी ।

उद्योगवार में पुनर्वित व बिल पुनर्भुनाई योजनाओं के अंतर्गत विभिन्न उद्योगों को दी जाने वाली लघु विकास बैंक की सहायता के विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि वर्ष के दौरान सहायता का प्रमुख हिस्सा खाद्य उत्पादों, वस्त्रों, रसायनों व रसायन उत्पादों, धातु उत्पादों तथा परिवहन क्षेत्र को मिला । राज्यवार में पुनर्वित व बिल पुनर्भुनाई योजनाओं के अंतर्गत हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, गोवा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा त्रिपुरा जैसे अल्प विकसित राज्यों को दी गयी सहायता की राशि में पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष वृद्धि हुई ।

पुनर्वित योजना के अंतर्गत विनिर्दिष्ट पिछड़े हुए क्षेत्रों को 1001.6 करोड़ रुपये की सहायता मंजूर की गयी जो कुल पुनर्वित सहायता का 43% है । अत्यंत लघु परियोजनाएं के अंतर्गत 053.3 करोड़ रुपये की सहायता मंजूर की गयी जो सहायता राशि का लगभग 45% और वर्ष के दौरान सहायता प्राप्त करने वाली इकाइयों की कुल संख्या का 91% है । भूतपूर्व सैनिक "सैम्फेक्स" के अंतर्गत भूतपूर्व सैनिकों द्वारा प्रायोजित 1213 परियोजनाओं को 33.2 करोड़ रुपये की पुनर्वित सहायता मंजूर की गयी । इसी योजना के अंतर्गत सुलभ ऋण के रूप में 7.2 करोड़ रुपये की इक्विटी सहायता दी गयी और 6.5 करोड़ रुपये संवितरित किये गये ।

महिला उद्यमी को दी जाने वाली सहायता में वर्ष के दौरान और वृद्धि हुई तथा 647 महिला उद्यमियों को 29.3 करोड़ रुपये दिये गये । महिलाओं के विकास के लिए काम करने वाली 14 स्वैच्छिक एजेंसियों को महिला विकास निधि के अंतर्गत कुल 40.3 लाख रुपये की अनुदान राशि तथा 10 लाख रुपये के सुलभ ऋण दिये गये ।

इस बैंक में पुनर्वित की विशेष योजनाएं भी हैं जिसमें पुनर्वास योजना में वर्ष के दौरान 31 पुनर्वास बैठकें आयोजित की गयीं और आवश्यक पुनर्वास सहायता प्रदान करने के लिए 229 लघु उद्योग इकाइयों की समीक्षा की गयी । वर्ष के दौरान 195 रुग्ण इकाइयों को पुनर्वास पुनर्वित योजना के अंतर्गत 10.5 करोड़ रुपये की सहायता दी गयी । आधुनिकीकरण सहायता में इस बैंक ने वर्ष के दौरान आधुनिकीकरण/प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए 164 प्रस्तावों के संबंध में 8.1 करोड़ रुपये का पुनर्वित मंजूर किया जबकि पिछले वर्ष 128 इकाइयों को यह सहायता दी गयी थी ।

एकल स्रोत योजना के अंतर्गत 1915 प्रस्तावों के संबंध में कुल 60.7 करोड़ रुपये की सहायता मंजूर की गयी जबकि 31.8 करोड़ रुपये संवितरित किये गये । राष्ट्रीय इक्विटी निधि में वर्ष के दौरान इस योजना के अंतर्गत दी जाने वाली सहायता में बढ़ोतरी हुई । पिछले वर्ष 421 प्रस्तावों के संबंध में दी गयी 1.6 करोड़ रुपये की सहायता की तुलना में इस वर्ष 635 प्रस्तावों के संबंध में 2.1 करोड़ रुपये मंजूर किये गये । इक्विटी सहायता में इस बैंक में बीज पूंजी योजना "सेम्फेक्स", राष्ट्रीय इक्विटी निधि तथा महिला उद्यम निधि योजना के अंतर्गत 11.7 करोड़ रुपये की इक्विटी सहायता दी ।

प्रत्यक्ष सहायता योजनाओं के अंतर्गत बिल योजनाओं में पिछले वर्ष प्रत्यक्ष बिल भुनाई योजना की शुरुआत ही हुई थी और इसको 26.0 करोड़ रुपये की सहायता दी गयी थी । मार्केटिंग योजना में मार्केटिंग की बुनियादी सुविधाएं सुलभ कराने के लिए पिछले साल शुरु की गयी प्रत्यक्ष सहायता की योजना में इस वर्ष उल्लेखनीय प्रगति हुई । इसके अंतर्गत 10 प्रस्तावों को 10.7 करोड़ रुपये की सहायता दी गयी जबकि 1990-91 में 3 प्रस्तावों के संबंध में 90 लाख रुपये की मंजूरी दी गयी थी । लीज़िंग के लिए सहायता कंपनियों को सहायता देने की एक योजना शुरु की गई थी जिसमें मंजूरियां 5.5 करोड़ रुपये से बढ़कर 26.0 करोड़ रुपये हो गयी और संवितरण की राशि 70.0 लाख से 7.2 करोड़ रुपये हो गयी । औद्योगिक क्षेत्र विकास योजना में वर्ष के दौरान 2 प्रस्तावों को 2.2 करोड़ रुपये मंजूर किये गये । फैक्टरिंग सेवाओं में लघु विकास बैंक ने पश्चिम क्षेत्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए एस.बी.आई. फैक्टर्स एण्ड कामर्शियल सर्विसेज प्रा. लि. की स्थापना हेतु भारतीय स्टेट बैंक को तथा दक्षिण क्षेत्र के लिए कैनबैंक फैक्टर्स लि० की स्थापना हेतु केनरा बैंक को सहयोग दिया । इन दोनों कंपनियों में लघु विकास बैंक की शेयरधारिता की राशि 7.0 करोड़ रुपये है । इन कंपनियों ने वित्तीय वर्ष 1991-92 के दौरान अपना कामकाज शुरू किया और 31 मार्च, 1992 तक लघु उद्योग इकाइयों के संबंध में कुल 23.9 करोड़ रुपये के ऋण फैक्टर किये । इन दोनों कंपनियों ने वर्ष के दौरान 2.2 करोड़ रुपये का लाभ कमाया ।

हथकरघा विकास निगम को 3.0 करोड़ मंजूर किये गये ताकि वह हथकरघा निर्यात संवर्द्धन परिषद् में पंजीकृत निर्यात करने वाली हथकरघा इकाइयों को धागा सप्लाई कर सके । बैंक

द्वारा जुटाये गये संसाधनों की कुल राशि 1168.8 करोड़ रुपये थी। भारत सरकार ने 19.9 करोड़ रुपये का ब्याज मुक्त ऋण दिया। इसके अलावा राष्ट्रीय इक्विटी निधि में 2.5 करोड़ रुपये का योगदान भी किया। ओ.ई.सी.एफ. ऋण इसने जापानी येन 20.256 बिलियन (335.6 करोड़ रुपये के बराबर) का तीसरा ऋण मंजूर किया। भारत सरकार व ओ.ई.सी.एफ., जापान के बीच 13 जून, 1991 को ऋण करार पर हस्ताक्षर हुए। भारत सरकार ने वर्ष के दौरान ओ.ई.सी.एफ. ऋण 11 से संबंधित 26.7 करोड़ रुपये की बकाया राशि भी दे दी। भारतीय रिजर्व बैंक ने राष्ट्रीय औद्योगिक ऋण निधि में से 440.0 करोड़ रुपये की सीमा मंजूर की। एशियाई विकास बैंक ने विकास बैंक को अमरीकी डालर 100 मिलियन की ऋण सुविधा दी। एस.एल.आर. बाजार उधार राशि में से लघु विकास बैंक को 300.0 करोड़ रुपये दिये। यह उधार राशि 20 वर्षों के बाद चुकाये जाने वाले ऋण के रूप में है।

निष्कर्ष

यद्यपि दो वर्ष विश्लेषण के लिए कम हैं फिर भी कहा जा सकता है कि बैंक अपने उद्देश्यों की पूर्ति में अग्रसर हो रहा है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि बैंक देश के लघु उद्योगों के संवर्धन, वित्त पोषण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। देश की परिवर्तनशील आर्थिक नीति उदारवादी होती जा रही है। लघु उद्यमी अब इस ओर बड़ी मात्रा में कदम बढ़ायेंगे। अतः इस बैंक की भावी भूमिका की महत्ता बढ़ेगी।

बी-126 ए, मंगल मार्ग,
बापू नगर, जयपुर-302015

समाज सेवा का स्वरूप

□ के०एल० गेरा □

भारतीय समाज में अंधानुकरण की प्रवृत्ति सदियों से रही है और आज स्वतंत्रता के 45-46 वर्षों के पश्चात् भी इस प्रवृत्ति में कोई रोक नहीं लगी है। आज समाज सेवा एक अंध प्रवृत्ति बन गई है। उदाहरण के तौर पर चिकित्सा शिविरों को ही लिया जा सकता है। हमारे देश में नेत्र शिविर लगते रहते हैं ताकि एक आम आदमी को इसका लाभ मिल सके। लेकिन क्या ये नेत्र शिविर नेत्र चिकित्सा का स्थायी माध्यम हैं, तो उत्तर यही होगा कि नहीं क्योंकि नेत्र शिविर 20 या 30 दिन के लिए लगता है या फिर कभी-कभी एक सप्ताह के लिए। इस थोड़े समय के लिए लगने वाले नेत्र शिविरों में लोगों की आंखों के ऑपरेशन किये जाते हैं। कई लोगों की आंखें टेस्ट करके ऐनकें दी जाती हैं और कई लोगों को नेत्र व्याधियों के लिए दवा दी जाती है। इन नेत्र शिविरों से लोगों को थोड़ी बहुत राहत तो मिलती है लेकिन स्थाई तौर पर लाभ नहीं पहुंच पाता है। अक्सर देखने में आता है कि लोगों को आपरेशन के बाद यदि दुबारा फिर डॉक्टर के पास जाना हो तो तब तक नेत्र चिकित्सा शिविर दूसरी जगह स्थानान्तरित हो जाते हैं। ऐसे में आम आदमी की समस्या जस की तस ही रहती है।

तो प्रश्न यह उठता है कि समाज के इस आम एवं कमजोर वर्ग के व्यक्ति को स्थायी लाभ कैसे पहुंचाया जाये। उसका हल यह है कि गांव-गांव में नेत्र चिकित्सा अस्पताल खोले जायें। इन अस्पतालों के निर्माण में सरकार का काफी धन व्यय होता है। अतः इस कार्य के लिए नेत्र चिकित्सा शिविर लगाने वाली संस्थाओं जैसे रोटरी क्लब, लायन्स क्लब इत्यादि को आगे आना चाहिए। समाज सेवा का यह कार्य मौलिक कार्य होगा।

अतः स्पष्ट है कि समाज सेवा का अहम् क्षेत्र चिकित्सा ही है जहां पर अभावग्रस्त जीवनयापन करने वाले एक आम आदमी की स्वास्थ्य समस्याओं का समाधान होता है और उसे जीवन में आशा का पुंज दिखाई देता है।

श्री मुंशीलाल महेन्द्रकुमार जैन के मकान के पास
जीवाजी चौक, ग्वालियर-474 001

पुस्तक
समीक्षा

पुस्तक : कौरवी लोक कथाएं, लेखक– डा० मानसिंह वर्मा, प्रकाशक–प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, मूल्य : 15 रुपये

भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने हाल ही में कौरवी लोक कथाएं पुस्तक प्रकाशित की है । लोक कथाएं आजकल काफी प्रचलित हैं क्योंकि लोक कथाओं में बच्चों के साथ-साथ बड़े भी रुचि लेते हैं। ये लोक कथाएं हमें अतीत से जोड़ती हैं और गुदगुदाती भी हैं । पुस्तक के लेखक डा० मानसिंह वर्मा ने भी स्वीकार किया है कि लोक कथा की आंखों से इतिहास और पुराण को देखने समझने का प्रयास इन लोक कथाओं की एक बड़ी विशेषता है । पुस्तक की लोक कथाएं एक से बढ़कर एक हैं ।

"नक्कालों ने दावत दी" पुस्तक की एक सुरुचिपूर्ण लोक कथा है । इसमें अंत तक रहस्य और उत्सुकता बनी रहती है। इस लोक कथा में प्राचीनकाल की दावतों के स्वरूप से परिचय कराया गया है ।

पुस्तक की लोक कथा 'सात भाभियां एक ननद" मनोरंजक तो है परन्तु उसमें यह दर्शाया गया है कि अपनी भाभियों के व्यवहार से तंग आकर राजकुमारी नदी में छलांग लगा देती है । संयोग से राजकुमारी के भाई जो वहां नहा रहे होते हैं उसकी जान बचा लेते हैं । इस तरह की कहानियां विपत्ति के आगे घुटने टेक देने की बात करती हैं । इसी तरह "जान बची लाखों पाये" लोक कथा में वैद्य का बेटा करमू अपने पिता की अनुपस्थिति में मरीजों को बिना सोचे समझे दवा की पुड़िया दे देता है । संयोग से मरीजों को दवा से लाभ हो जाता है परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा अत्यंत कठिन है । बिना सोचे विचारे किया गया काम खतरे से खाली नहीं होता ।

पुस्तक में मुहावरों का प्रयोग बहुत सोच समझकर किया गया है । "नक्कालों ने दावत दी" लोक कथा में तो मुहावरों की भरमार ही है । लोक कथा का अन्त भी मुहावरों के प्रयोग से ही होता है– "गांववाले अपने हाथ मलते हुए, पेट पकड़ते हुए और दांत किटकिटाते हुए अहाते से बाहर निकल गये ।"

भावना द्वारा बनाये ये चित्र लोक कथाओं की मूल भावना को सामने लाने में सक्षम हैं । महत्वपूर्ण बात तो यह है कि लोककथाओं में सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग के अनुरूप चित्रांकन हुआ है । एक दो चित्रों में थोड़ी सी सावधानी और बरती जानी चाहिए थी उदाहरणार्थ 'महादेव की चिप्पक" लोक कथा में पार्वती जी को भगवान शिव के दाईं ओर चित्रित किया गया है ।

समीक्षकः श्री बीर शर्मा
द्वारा भारतीय स्टेट बैंक
गुलावठी-245 408
उत्तर प्रदेश

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें :

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए । इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए ।

रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए । विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

रचना के साथ ब्लैक व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं ।

प्रतियोगिता सम्राट

की गौरवशाली भेंट

गत वर्ष की परम्परा में इस वर्ष भी हम प्रस्तुत कर रहे हैं

सिविल सर्विसेज (प्रा.) परीक्षा पर केंद्रित

विशेषांकों की शृंखला

(फरवरी 1993 से जुलाई 1993 तक)

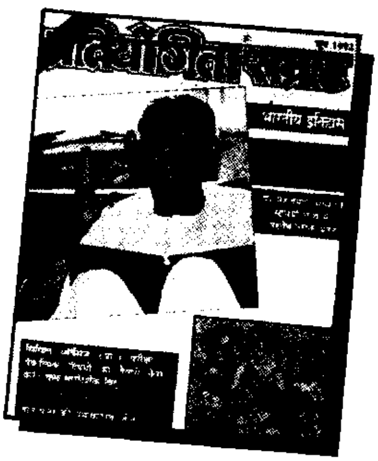

- ☐ भारतीय इतिहास/राष्ट्रीय आंदोलन
- ☐ भारत एवं विश्व का भूगोल
- ☐ भारतीय राज व्यवस्था
- ☐ भारतीय अर्थ व्यवस्था
- ☐ सामान्य विज्ञान/पशुपालन/कृषि विज्ञान
- ☐ सामान्य अध्ययन

दीवान पब्लिकेशंस (प्रा.) लि.

L-1 कंचन हाउस, नजफगढ़ रोड, कमर्शियल काम्पलैक्स, नजदीक मिलन सिनेमा, नई दिल्ली-110015

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/93
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/93
Licenced under U (DN) 55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

डा. श्याम सिह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित